जियो तो ऐसे जियो

खुशहाल रहें, कामयाब बनें

जयंती जैन

जियो तो ऐसे जियो

खुशहाल रहें, कामयाब बनें

जयंती जैन

ज्ञान गंगा, दिल्ली

विषय सूची

दिल से

आप सबसे महत्त्वपूर्ण हैं

यह पुस्तक आपके लिए क्यों उपयोगी है?

पुस्तक के जन्म की कहानी

आत्मा-देह-मस्तिष्क मिलकर प्रकृति के गीत गाते हैं

भाग एक: मस्तिष्क-प्रबंधन

1.स्व-प्रबंधन की जड़: आत्म-विज्ञान

2.प्रबंधन का रहस्य: विचारों को बदलें

3.खुद का प्रबंधन कैसे करें

भाग दो: देह-प्रबंधन

4.संपूर्ण स्वास्थ्य

5. थकान मिटाएँ: विश्राम से ऊर्जा प्राप्त करें

6. जीवन में रीचार्ज होने के लिए जरूरी है स्वस्थ मनोरंजन

7.बुढापे को चुनौती

8.जानलेवा रोगों का सामना कैसे करें

भाग तीन: अर्थ-प्रबंधन

9.पैसा रास्ता है, मंजिल नहीं

10.व्यावसायिक जीवन को खुशहाल कैसे बनाएँ?

भाग चार: परिवार-प्रबंधन

11.जीवन-साथी के साथ कैसे रहें

12.कैसे जीतें काम-वासना को

13.स्वीकारने एवं स्वयं को प्रेम करने का विज्ञान

14.बच्चों को पालने की कला एवं विज्ञान

15.परिवार में शांति एवं बुजुर्गों के साथ रहने की कला

भाग पाँचः समाज-प्रबंधन

16.समाज से कैसे जुड़ें: सहयोग कैसे पाएँ

17.कृष्ण जैसे सच्चे मित्र की मदद से तनाव को जीतें

18.जीवन-शैली को बदलने की प्रक्रिया में उत्पन्न प्रश्न

भाग छहः मृत्यु-प्रबंधन

19.मृत्यु का सामना कैसे करें?

20.परलोक-विज्ञान

भाग सातः चेतना-प्रबंधन

21.ध्यान का विज्ञानः साक्षी जीवन

22.चेतना का विज्ञान

जीवन-प्रबंधन के अनूठे सूत्र

दिल से

हम एक दिन में कितनी ही बार लोगों को धन्यवाद देते हैं। लेकिन यह अमूमन उन तक पहुँचता नहीं है। इसलिए शाब्दिक धन्यवाद देकर रस्म अदायगी मेरे वश में नहीं है। फिर भी उनको याद न करना भी अनुचित होगा, जिनके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष योगदान के बिना यह कृति हाथ में नहीं होती।

अपने माता-पिता, परिजनों व समुदाय के उन सभी मित्रों का आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे 'जैसा हूँ वैसा स्वीकार किया है।' इस जगत् की संस्कृति व सभ्यता के सभी ऋषियों व वैज्ञानिकों का ऋणी हूँ, जिन्होंने मुझे गढ़ा है। याद करता हूँ अपने मित्रों को, जिन्होंने इसकी रचना में प्रत्यक्ष सहयोग किया है—श्री ललित कोठारी (आई.ए.एस.), श्री एच.एल. कुणावत (आर.ए.एस.), श्री एस.एल. बोहरा (आर.ए.एस.), शंकर मालवीय (आर.ए.एस.), माइंड पावर वैज्ञानिक श्री राज बापना, प्रो. एस.आर. व्यास—प्रोफेसर दर्शनशास्त्र, श्री बी.एल. उदावत, श्री गिरधारी गर्ग, प्रीति मुर्डिया, साथी डॉ. नीतू भारद्वाज व डॉ. दिलीप धींग का। टाइपिस्ट शाह मनीष जैन के निरंतर सहयोग के बिना यह कृति ऐसी नहीं बन पाती।

मैं आभारी हूँ जीवन-संगिनी मीना, मित्रवत् सुपुत्र वीतराग व सुपुत्री सर्वज्ञा का, जिनके सहयोग के बिना इस पुस्तक का सृजन संभव नहीं था। मैं सभी लेखकों, जिनसे नए विचारों की स्फुरणा हुई है, उन सभी का भी कृतज्ञ हूँ। इस रचना में सूक्ष्म-सत्ताओं, अदृश्य मित्रों, अलौकिक शक्तियों एवं ब्रह्मांडिम ऊर्जाओं का योगदान मेरा सौभाग्य है।

आप सबसे महत्त्वपूर्ण हैं

प्रिय मित्र,

समाज हमें विभिन्न भूमिकाओं में केवल एक पात्र मानता है। कोई पिता, पुत्र, भाई, चाचा, सेठ, पति, कर्मचारी, नागरिक, समाज या धर्म विशेष का सदस्य मानता है। सभी आपको अपने प्रयोजन के अनुरूप किसी-न-किसी भूमिका में देखते एवं मानते हैं। कोई भी आपको एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं मानता है। भीड़ में से आपको अलग करने हेतु एक नाम दिया जाता है। वे चाहते हैं कि आप अपनी भूमिका पात्र अनुसार निभाएँ। कोई आपको व्यक्ति मानने वाला आज तक नहीं मिला होगा। तभी तो हम एक चकरघिन्नी बने हुए हैं। इस दौड़ में दौड़ते-दौड़ते हम स्वयं को भूल जाते हैं।

स्वयं को खोकर कुछ भी पा लें तो बेकार है। इस 'स्वयं' को सुव्यवस्थित करने की कला का नाम जीवन प्रबंधन है। हम जानते हैं कि शून्य का भी महत्त्व अंकों के साथ ही है। इसी प्रकार हम स्वयं को पाकर ही जीवन को जान पाते हैं। यही है जीवन प्रबंधन।

संपूर्ण अस्तित्व के कारण हम अभिव्यक्त हो रहे हैं। हमारा यह परम सौभाग्य है। एक जिस रुप में है, हमारा इसी रुप में होने का कोई अधिकार नहीं है। हमारा कोई यहाँ होने का किसी पर दावा नहीं है। हम अनुपम व अद्बितीय हैं। हमारे होने से जगत् है। हमारी कोई दूसरी प्रति नहीं है। चाँद-तारे, सूरज, धन-दौलत, सब हमारे होने से हैं। हमारे यहाँ से अलग होते ही ये हमारे प्रसंग में बेकार हैं। जब हम हैं तो स्वयं का बेहतर प्रबंधन कर स्वयं को खुश रखें। इस विद्या को स्कूल में नहीं सिखाया जाता है; न ही जीवन प्रबंधन पर कोई एम.बी.ए. होती है। लेकिन इस विद्या को सीखना जरूरी है। अतः आगे पढ़े —

अपने आप से जुड़ो, कुदरत से जुड़ जाओगे।

फिर प्रसन्नता से जी सकोगे जीने की कला यही है।

यह पुस्तक आपके लिए क्यों उपयोगी है?

जीवन-मुरगों की रूसी संस्था

एक प्राचीन रूसी कथा है। एक बड़े टोकरे में बहुत से मुरगे आपस में लड़ रहे थे। नीचे वाला मुरगा खुली हवा में साँस लेने के लिए अपने ऊपर वाले को गिराकर ऊपर आने के लिए फड़फड़ाता है। सब भूख-प्यास से व्याकुल हैं। इतने में कसाई छुरी लेकर आ जाता है। एक-एक मुरगे को पकड़कर टोकरे से बाहर खींचकर गरदन काटकर वापस फेंकता जाता है। सफाई कर पंख आदि बाहर फेंकता जाता है। कटे हुए मुरगों के शरीर से गरम लहू की धार फूटती है। भीतर के अन्य जिंदा मुरगे अपने पेट की आग बुझाने के लिए उस पर टूट पड़ते हैं। इनकी जिंदा चोंचों की छीना-झपटी में मरा-कटा मुरगे का सिर गेंद की तरह उछलता-लुढ़कता है। कसाई लगातार टोकरे के मुरगे काटता जाता है। टोकरे के भीतर की खाद्य सामग्री में हिस्सा बाँटने वालों की संख्या भी घटती जाती है। इस खुशी में बाकी बचे मुरगों के बीच से एकाध की बाँग भी सुनाई पड़ती है। अंत में टोकरा सारे कटे मुरगों से भर जाता है। चारों ओर खामोशी है, कोई झगड़ा या शोर नहीं है।

इस रूसी कथा का नाम है—जीवन।

ऐसा है जीवन। सब यहाँ मृत्यु की प्रतीक्षा में है। प्रतिपल किसी की गरदन कट जाती है। लेकिन जिनकी गरदन अभी तक नहीं कटी है, वे संघर्षरत हैं, वे प्रतिस्पर्धा में जुटे हैं। जितने दिन, जितने क्षण उनके हाथ में हैं, उनका उन्हें उपयोग कर लेना है। इस उपयोग का एक ही अर्थ है—किसी तरह अपने जीवन को सुरक्षित कर लेना है, जो कि सुरक्षित हो ही नहीं सकता।

सफलता सदैव खुशी, शांति व तृप्ति नहीं लाती है। सफलता हमारी प्रतिष्ठा जरूर बढ़ा देती है। सफलता के साथ शांति के आने का कोई नियम नहीं है।

इस पुस्तक की जरूरत किसे है

- जो बेहतर जीवन, बेहतर खुशियाँ, बेहतर संबंध व मानसिक शांति चाहते हैं।
- जो अपने जीवन को वरदान बनाना चाहते हैं।
- जो स्वस्थ शरीर, संतुलित मन व लयबद्ध जीवन चाहते हैं।
- जो अपने कार्य को आराम एवं मस्ती से करना चाहते हैं।

- जो अपने को प्रेम करते हैं एवं जो अपनों से प्रेम चाहते हैं।
- जो अपने परिजनों, बच्चों, बुजुर्गों के साथ जीवन का आनंद चाहते हैं।
- जिनको स्वयं के साथ अकेले रहने में समस्या है। जो अपने से राजी नहीं हैं, जो अपनी उपेक्षा करते हैं, अपने साथ अन्याय करते हैं एवं जो अकेले बोर होते हैं।
- वे मित्र जो अपने से दुःखी हैं।
- जिनको जीने में रस नहीं आ रहा है।

शब्द सांकेतिक है

बहुत पुरानी कहानी है। किसी गाँव में एक चतुर किसान रहता था। मरते समय वह अपनी वसीयत का बँटवारा निम्न प्रकार कर गया। बड़े बेटे को उसकी संपत्ति का आधा हिस्सा मिले, मँझले बेटे को एक चौथाई व उसकी संपत्ति का छठा भाग सबसे छोटे बेटे को मिले। किसान की कुल जमा पूँजी उसकी ग्यारह गाय थीं। उसके मरने पर बँटवारे का चक्कर पड़ गया। गायों का बँटवारा 1/2, 1/4, 1/6 कैसे करें।

अंत में गाँव के एक समझदार व्यक्ति ने कहा कि उसकी पूँजी में मेरी एक गाय मिला लो, फिर उसका बँटवारा कर दो। अब तो बात बहुत साफ हो गई। बड़े बेटे को बारह की आधी यानी छह गाय दे दी गईं। मँझले बेटे को बारह की चौथाई यानी तीन गाय दी गईं। छोटे बेटे को बारह का छठा हिस्सा दो गाय दे दी गईं। इस प्रकार छह योग तीन योग दो कुल मिलाकर ग्यारह गायें तीनों बेटों में बाँट दी गईं। बची शेष गाय गाँव के समझदार व्यक्ति को पुनः सौंप दी गई।

यह गाय शब्द है, जो आपके भावों को जगा सके। यह मेरी गाय संकेत करती है आपको जगाने हेतु, आपकी पूँजी को प्राप्त करने में। अगर प्राप्त कर सके तो यह लेखक आभारी रहेगा।

उम्रे दराज माँगकर लाए थे चार रोज,

दो आरजू में कट गए, दो इंतजार में।

—जफर

पुस्तक के जन्म की कहानी

सुखी रहने के अनेक उपाय करके भी मैं सुखी न हो सका। गाय-भैसों के बीच पैदा होकर आज उपायुक्त के पद पर हूँ। इस बीच भौतिक सुख के बहुत से साधन जुटाए, सांसारिक सुखों को भोगा। परिवार को व्यवस्थित किया, फिर भी तृप्ति न मिली। महर्षि महेश योगी, श्री श्री रविशंकर, ओशो के ध्यान किए, श्रीराम शर्मा, एंथनी रॉबिन्स, स्टीवन कू, रिचर्ड बेंडलर, डेल कारनेगी, दीपक चोपड़ा, स्वेट मार्डन जैसे अनेक विद्वानों व गुरुओं को पढ़ा। महावीर, बुद्ध का उपलब्ध साहित्य पढ़ा, गुना, लिखा व प्रयोग किया। लेकिन सुख-तृप्ति न मिली; मेरी भटकन जारी रही। आखिर मेरी तकलीफ क्या है?

मैं सबके साथ रह सकता हूँ, लेकिन अपने साथ अकेले नहीं रह सकता हूँ। स्वयं अकेले में बेचैन या उदास हो जाता हूँ। तभी तो अपने से भागता हूँ। टी.वी. देखता हूँ या विचारों में खोता हूँ। इसी से समझ में आया कि मेरा अपना प्रबंधन ठीक नहीं है। मैं अपने पथ पर आगे ठीक नहीं बढ़ रहा हूँ। मुझे स्वयं को बदलने की जरूरत है। हमें सुख चाहिए। हमारी एकमात्र आकांक्षा सुख चाहिए, दुःख से हम दूर रहना चाहते हैं। लेकिन अस्तित्व का नियम यह है कि दोनों सदैव छाया की तरह एक साथ दूसरा उपस्थित रहता ही है। यही बात हमारी समझ में नहीं आती है। सुख-दुःख जोड़े से चलते हैं। सिर्फ सुख या दुःख अकेले नहीं मिलते हैं। ऐसा होना अस्तित्व के विरुद्ध है। गुलाब के साथ काँटे होते ही हैं। प्रेम व घृणा एक ही तरह के परमाणुओं से बने हैं। क्रोध व क्षमा एक ही तरह के परमाणुओं की विपरीत अवस्थाएँ हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

पूरी जमीन काँटों से बिछी पड़ी है। इस पर हम चमड़ा नहीं बिछा सकते हैं। यह असंभव है, लेकिन अपने पाँव के तलवे के नीचे चमड़ा बिछाया जा सकता है। तभी तो जूते की खोज हुई है।

आज हम सभी अकेले नहीं रह पाते हैं। हम अकेले में घबरा जाते हैं, उदासी छा जाती है, बेचैन होने लगते हैं। तभी तो स्वयं को भरने के लिए रेडियो, टी.वी. शुरु करते हैं, कुछ पढ़ने लग जाते हैं या कुछ करने में व्यस्त हो जाते हैं। इस तरह हम स्वयं को भूलने का प्रयास करते हैं। यह बताता है कि हमारा प्रबंधन ठीक नहीं है। हम अपने साथ कैसे रहें, हमें ज्ञात नहीं है।

जीवन भर हम दूसरों के साथ कैसे रहें, यह सीखते हैं, लेकिन स्वयं को भूल जाते हैं। जबकि हमारे प्रथम मित्र तो हम हैं। यदि हम अपने साथ सुख एवं खुशी से

नहीं रह सकते है तो जीवन का क्या अर्थ है। हमारी उपलब्धियाँ एवं जीतने का क्या अर्थ है।

यदि आप दुःखी हैं जीवन में, तो पक्का समझ लेना कि आप स्वधर्म से च्युत हुए हैं। जहाँ भी स्वधर्म की यात्रा होती है, वहाँ आनंद फलित होता है। मैं अपनी इसी समस्या का समाधान खोजने में लगा और इसी क्रम में यह पुस्तक आई है।

इस पुस्तक से ज्यादा लाभ उठाने के छह सुझाव

- इस पुस्तक को उपन्यास की तरह नहीं पढ़ें। यह उपन्यास नहीं है। एक भाग प्रतिदिन पढ़ें, मनन करें एवं प्रयोग करें।
- इसमें वर्णित उपायों एवं सूत्रों पर अपने मित्रों एवं परिवार में चर्चा करें। ये चर्चाएँ आपकी समझ को बढ़ाएँगी। इससे आप में जीवन प्रबंधन संबंधी सूत्रों की गहरी समझ विकसित होगी और आप दूसरों को भी इसका लाभ दे सकेंगे।
- इस पुस्तक को एक 'अभ्यास-पुस्तिका' की भाँति काम में लें। जो शब्द, वाक्य या अनुच्छेद अच्छा लगे, उसे लाल पेन से चिह्नित करें।
- सर्वप्रथम वे तरीके अपनाएँ जो आप पर अधिकतम लागू होते हों। ज्यादा लाभ के लिए सारे तरीकों का एक साथ प्रयोग न करें। मात्र कुछ तरीकें भी आपको आशातीत लाभ या परिणाम दे सकते हैं।
- इस पुस्तक को कम-से-कम छह माह तक अपनी टेबल पर रखे। बार-बार इसका अध्ययन करें और जीवन-शैली बदलने के उपायों का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करें।

एक डायरी में अपने अनुभवों व प्रयासों को प्रतिदिन लिखें; जिससे आपको प्रेरणा व प्रोत्साहन मिलेगा और इन उपायों को अपनाने में रुचि बढ़ेगी।

हो सकता है, जीवन जीने के इन सूत्रों, विधियों, तरीकों या उपायों से आप पहले से ही अवगत हों, फिर भी आप इनकी शक्ति को कम न समझे। मैं समझता हूँ, ये ही वे उपाय हैं, जो आपको जीवन जीने की कला सिखा सकते हैं। आगे बढ़िए, मात्र मार्ग की जानकारी मंजिल तक नहीं पहुँचा देगी। आपको उस मार्ग पर चलना ही होगा। मार्ग पर चलना प्रारंभ करेंगे, आगे बढ़ेंगे, तभी लक्ष्य को प्राप्त कर पाएँगे।

पुस्तक में बताई गई सारी विधियाँ सिद्ध एवं प्रयोग की हुई विधियाँ हैं। यदि आपको इन उपायों के प्रयोग में कहीं किसी भी प्रकार की अड़चन अनुभव होती है तो आप मुझे निम्न पते पर पत्र लिख सकते हैं—

जयंती जैन

एफ-40, हिरन मगरी,

सेक्टर-14, उदयपुर (राज.)-313002

फोन 0294- 2641889. मोबाइल 094142 89437

संपर्क समय: सायंकाल 6 से 9 बजे तक

e-mail: jayntijain@gmail.com

मेरे हिंदी ब्लॉग: uthojago.wordpress.com पर भी संपर्क हो सकता है।

इंग्लिश ब्लॉग: jayantijain.wordpress.com

आत्मा-देह-मस्तिष्क मिलकर प्रकृति के गीत गाते हैं

हमारा जीवन अपने मस्तिष्क, देह, अर्थ, परिवार, समाज, मृत्यु व चेतना के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। इनको व्यवस्थित न करने पर ये हमें नचाते हैं। अतः जीवन जीने की कला इन सातों के प्रबंधन में निहित है। इनको मैनेज करते ही खुद मैनेज हो जाते हैं। अतः इनको समझकर, इनके आधारों को जानकर, इनकी जड़ों को पोषित कर जीवन का सुंदर पौधा विकसित कर हम महकदार फूल (जीवन) पा सकते हैं। अतः इनका नियमन करना जरूरी है। इनको व्यवस्थित न करने की स्थिति में जीवन तनावपूर्ण हो जाता है। ऐसे में सफलता व्यर्थ हो जाती है। भौतिक उपलब्धियों के होने पर भी मन को शांति नहीं मिलती है। जीवन समग्र है। इसे सही रूप में समझने के लिए पुस्तक को सात भागों में विभाजित किया गया है।

भाग एक
मस्तिष्क-प्रबंधन

उद्देश्य

मनुष्य की विशेषता उसका मन है। उसे अपने पक्ष में प्रयोग करने हेतु उसका प्रबंधन अति आवश्यक है। हम मन द्वारा चलाए जाते हैं। अतः बदलने के लिए स्वयं को पहचानना और तत्त्वों को जानना जरूरी है। इस हेतु सकारात्मक सोच, स्वीकार भाव अपनाना व भय से मुक्त होना जरूरी है। मन का प्रबंधन ही स्व-प्रबंधन व आत्म-विज्ञान है। विचार-प्रबंधन का दूसरा नाम मस्तिष्क-प्रबंधन है।

हमारी देह का नियंत्रण मस्तिष्क से होता है। अतः मस्तिष्क को लक्ष्य की दिशा में उपयोग करने हेतु विचारों पर नियंत्रण जरूरी है। शरीर की ग्रंथियों को नियंत्रित करने हेतु सकारात्मक रसायन एवं शांत मस्तिष्क आवश्यक है।

मस्तिष्क को शांत रखने हेतु क्रोध, निराशा व नाराजगी का प्रबंधन भी जरूरी है। अपनी प्रतिक्रियाओं को देखें, वे स्वतः रुकेंगी। क्रोध, निराशा, नाराजगी आदि नकारात्मक बातें किसी का समाधान नहीं हैं, समस्याएँ हल करनी पड़ती हैं। चीखने, चिल्लाने से हम अशांत हो सकते हैं, सार्थक कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। उलझनें स्वतः नहीं सुलझती हैं। विचारों का जन्म मस्तिष्क में होता है। शांत अवस्था में यह अनेक समाधान सुझाता है। इनका प्रबंधन करके ही जीवन को वरदान बनाया जा सकता है। इस लाभप्रद प्रबंधन के कुछ सरल उपाय यहाँ उपलब्ध हैं। कुछ शंकाओं का समाधान भी यहाँ किया गया है।

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री

दीपक चोपड़ा - सुखमय जीवन के सीक्रेट्स

विनोबा भावे - गीता प्रवचन

राज बापना - माइंड पावर स्टडी टेक्नीक

जयंती जैन - उठो-जागो, लक्ष्य की प्राप्ति तक रुको नहीं।

Ekchort Tolle—The Power of Now

Tony Buzan—Use your Head

"जगत् में बहुत सौंदर्य, आलोक एवं आनंद है। काश! यह सब देखने के लिए हमारे पास चक्षु और अनुभव करने का हृदय हो।"

—ओशो

1

स्व-प्रबंधन की जड़: आत्म-विज्ञान

स्वयं को समझने व पास आने का विज्ञान

> *"आत्मज्ञान का संपादन करना और आत्म केंद्र में स्थिर रहना परम कर्तव्य है।"*
>
> *—टालस्टॉय*

जीवन-प्रबंधन का महत्त्व

अगर हमें आत्म-प्रबंधन की कला नहीं आती है तो जीवन की सारी पढ़ाई एवं सारी तथाकथित उपलब्धियाँ बेकार हैं। इस पर मुझे पश्चिमी देश की एक कहानी याद आती है—

एक प्रोफेसर एक जहाज से यात्रा कर रहा था। बहुत पढ़ा-लिखा तो था, पर अभी जीवन का अनुभव कम था। उसी जहाज पर एक बहुत बूढ़ा अनपढ़ नाविक भी यात्रा कर रहा था। कभी-कभी वह नाविक प्रोफेसर के कैबिन में जाता था और उसकी बड़ी-बड़ी, ऊँची-ऊँची पांडित्यपूर्ण बातें सुनकर अवाक् रह जाता था कि वह कितना पढ़ा-लिखा, और विद्वान् पंडित है।

एक दिन बहुत बातें होने के बाद जब वह जाने लगा तो प्रोफेसर ने पूछ लिया, "अरे बाबा, तूने जियोलॉजी (भूगर्भ-शास्त्र) पढ़ी है?"

नाविक बोला, "वह क्या होता है साहब?"

प्रोफेसर—"इस धरती का एक शास्त्र होता है। तूने पढ़ा है?"

नाविक—"साहब, मैं तो बिलकुल अनपढ़ हूँ, मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। मैं किसी स्कूल में गया नहीं। मैंने कुछ नहीं पढ़ा।"

प्रोफेसर—"अरे बाबा, तूने अपनी एक चौथाई जिंदगी बरबाद कर दी।"

बूढ़ा बहुत उदास हो गया! इतना बड़ा विद्वान् कहता है तो सचमुच मैंने एक चौथाई जिंदगी बरबाद कर दी होगी। दूसरे दिन फिर प्रोफेसर के पास आया। बहुत सी बड़ी-बड़ी बातें सुनने के बाद जब जाने लगा तो फिर प्रोफेसर पूछ बैठा, "अरे बाबा, तूने ओशनोलॉजी (समुद्र शास्त्र) पढ़ी है?"

नाविक—"वह क्या होता है, साहब?"

प्रोफेसर—"अरे, समुद्र का भी एक शास्त्र होता है, तूने पढ़ा है?"

नाविक—"महाराज! मैंने कुछ नहीं पढ़ा।"

प्रोफेसर—"अरे बाबा, तूने अपनी आधी जिंदगी बरबाद कर दी।"

बूढ़ा बड़ा उदास हुआ।

तीसरे दिन प्रोफेसर ने फिर पूछ लिया—

"अरे बाबा, तूने मिट्रीयोलॉजी (मौसम-विज्ञान) पढ़ी है?"

नाविक—"वह क्या होती है, कभी सुनी ही नहीं।"

प्रोफेसर—"अरे, इस हवा का, पानी का, मौसम का, गति का, इन सबका भी एक शास्त्र होता है, पढ़ा है?"

नाविक—"साहब! मैंने कुछ नहीं पढ़ा।"

प्रोफेसर—"अरे बाबा, तूने अपनी तीन-चौथाई जिंदगी चौपट कर दी। जिस धरती पर रहता है, उसका शास्त्र नहीं पढ़ा। जिस समुद्र में रोज यात्रा करता है, उसका शास्त्र नहीं पढ़ा। जिस हवा-पानी के मौसम से तेरा वास्ता पड़ता है, उसका शास्त्र नहीं पढ़ा। बड़ा अभागा है रे!"

बूढ़ा बड़ा उदास। अगले दिन बाबा की बारी आई—भागा-भागा आया और पूछा, "प्रोफेसर साहब, प्रोफेसर साहब! आपने स्विमोलॉजी (तैराकी-शास्त्र) पढ़ी है?"

प्रोफेसर—"वह क्या होता है?"

नाविक—"आपको तैरना आता है?"

प्रोफेसर—"नहीं भाई, मुझको तो तैरना नहीं आता।"

नाविक—"तो प्रोफेसर साहब, आपने अपनी पूरी जिंदगी चौपट कर दी। इस जहाज को टक्कर लग गई है। यह डूबने ही वाला है। वह किनारा दिखाई दे रहा है, जिसको तैरना आता है, वह वहाँ तक पहुँच जाएगा। जिसको तैरना नहीं आता, वह तो डूब ही जाएगा। आपने तो अपनी पूरी जिंदगी खो दी।"

तो भाई, सारी दुनिया की 'लॉजी' (शास्त्र) पढ़ लेंगे और 'स्विमोलॉजी' नहीं पढ़ेंगे, तो ये सारी 'लॉजियाँ' किस काम आएँगी?

आत्म-अज्ञान से बड़ा कोई अंधकार नहीं है

जीवन को व्यवस्थित करने की कला एवं विज्ञान को आत्म-प्रबंधन कहते हैं। यह कला नहीं आती तो हममें और उस प्रोफेसर में क्या अंतर है? आप में से किस-किस को स्विमोलॉजी आती है?

प्रबंधन में लक्ष्य तय करना, योजना बनाना एवं उसे क्रियान्वित करना है। स्व-प्रबंधन में अपनी समस्यों को जानना, उनको पहचानना, उनके समाधान के विकल्प सोचना, विकल्पों का माप-तौल करना एवं श्रेष्ठ विकल्प पर अमल करना है। स्वयं को स्वीकारने की कला, स्वयं को जानने और मानने का दर्शन आत्म-प्रबंधन है।

जब तक आप खुद को व्यवस्थित नहीं कर सकते तब तक किसी को भी व्यवस्थित नहीं कर सकते हैं। हम अपनी कार चलाते वक्त ध्यान रखते हैं कि कच्ची सड़क पर न उतारें, क्योंकि उससे टायर खराब हो सकते हैं। उसी तरह जिंदगी की गाड़ी चलाते वक्त हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारी जिंदगी खुशियों से भरी-पूरी हो। ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे अशांति हो है, उम्र कम होती हो। कार चलाने से भी महत्त्वपूर्ण है जिंदगी जीना। कार चलाने का भी हम प्रशिक्षण लेते हैं, लेकिन जीवन जीने का कोई प्रशिक्षण नहीं लेते। जीवन जीने की कला सीखना ही आत्म-प्रबंधन है।

सत्तर के दशक की प्रसिद्ध अभिनेत्री मीना कुमारी सबकुछ पाकर भी जीवन में हारी। मीना कुमारी अपने जीवन का सही प्रबंधन न कर पाने से चालीस वर्ष की उम्र से पूर्व ही शराब पीने से मर गई। वह प्यार में चोट खाने से नशे की शिकार हो गई; घुट-घुटकर जीने से वह अपना जीवन-प्रबंधन न कर पाई। चलचित्र के परदे पर इतना बढ़िया रोल करने वाली खुद को न सँभाल सकी। देखिए सफलता सदैव सुख नहीं लाती है। इसी कारण महान् फिल्मकार गुरुदत्त ने आत्महत्या की थी।

चीन के विचारक कनफ्यूशियस ने लिखा है—"अज्ञानी लोग ही दूसरे को जानने की कोशिश करते हैं। ज्ञानी वही है जो अपने को जानने की कोशिश करता है।" चीन के दार्शनिक सिद्धांतों का विश्वास था कि मनुष्य स्वयं दिव्य है, मनुष्य के हृदय से ऊँचा कोई देवता नहीं है।

आप बादशाह हैं। यह जीवन आपका है। यह पूरा जगत् आपके होने से है। आप स्वयं को भूलकर कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तभी तो सुकरात, बुद्ध, महावीर, वेद, उपनिषदों से लेकर श्रीअरविंद तक सबने स्वयं को जानने की बात कही है। आत्मज्ञान कोई दूर का विज्ञान नहीं है। बुद्धत्व कोई चमत्कार या अनहोनी घटना नहीं है। **यह स्वयं का, स्वयं को, स्वयं से जानना है।** इस जानने में सिद्धांत नहीं है। यह उसके साथ एकाकार होना है, पूर्ण ज्ञान है। इसको जानने के बाद कुछ अन्य जानना शेष नहीं रहता है। यही आत्मविजय, आत्म-साक्षात्कार एवं समग्र के साथ एक होना, स्वयं का मिटना, साथ होना है, इसे ही बूँद का सागर में मिलना या बूँद का सागर होना कहते हैं।

मनुष्य शरीर, मन एवं चेतना का जोड़ है। हम मात्र स्थूल शरीर नहीं हैं। शरीर के पार भी बहुत कुछ है। अतः उनका प्रबंधन करने हेतु निम्नांकित उपाय करें।

स्व-प्रबंधन के उपाय

1. प्रातः कालीन भ्रह्मण-दिन को व्यवस्थित करना

भौतिक शरीर के प्रबंधन हेतु श्रम बहुत जरूरी है। आज हमारे जीवन में श्रम का अभाव है। अतः भ्रमण शरीर के रखरखाव हेतु अत्यावश्यक है। सप्ताह में कम-से-कम पाँच दिन भ्रमण पर जाने से पूरा लाभ मिल जाता है। किसी कारण से एक-दो दिन घूमने न जा सकें तो भी भ्रमण के लिए जाना बंद न करें।

आधुनिक शोध से प्रकट हुआ है कि उनतीस मिनट से कम घूमने पर घूमने का वांछित लाभ नहीं मिलता है। भ्रमण के दौरान भ्रमण की निश्चित अवधि तक व्यक्ति स्वयं के पास होता है। पूरे दिन में यही समय उसका अपना होता है। जब वह स्वयं से बात कर हलका महसूस करता है। वह मुखौटों से दूर होता है। भ्रमण का एक घंटा शेष तेईस घंटों पर भारी होता है। भ्रमण के अतिरिक्त पूरे दिन व्यक्ति जीवन की भागदौड़ के भार से दबा-दबा महसूस करता है।

भ्रमण के समय व्यक्ति को अकेले में समस्या पर विचार करने का समय मिलता है। स्वयं से बात कर व्यक्ति स्वयं का एवं समस्या का सही-सही विश्लेषण कर पाता है। व्यक्ति स्वयं से प्रश्न करता है; लड़ पाता है; सही समाधान स्वतः आते हैं। तत्समय समस्या के अन्य दबाव दूर रहते हैं। सिर्फ समस्या अपने सही रूप में आपके सामने रहती है। उसका छद्म भेष अनावृत रहता है। इससे उसका समाधान ढूँढ़ना आसान रहता है। समाधान की यह स्थिति भ्रमण के समय ही उपलब्ध रहती है। खुले प्राकृतिक वातावरण में भ्रमण से सांसारिक तनावों की

स्वतः विस्मृति होकर सोच सकारात्मक एवं अनंत आकाश की तरह विस्तारित बनता है। व्यक्ति का जीवन तनावों से मुक्त रहता है।

भ्रमण से व्यक्ति शरीर से स्वस्थ रहता है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहता है। मन-शरीर स्वस्थ होने की दशा में व्यक्ति शांत, तनावमुक्त, व्यग्रता से दूर होता जाता है। नियमित भ्रमण की आदत से यह स्थिति उपलब्ध होती है। जीवन में आलस्य-अनियमितता दूर रहते हैं। जीवन ताजगी एवं मर्यादाओं से पूर्ण होता जाता है। जीवन में अनुशासन प्रवेश करता है। यह एक दिन में नहीं, निरंतर प्रयासों से फलित होता है। भ्रमण की दिशा में आगे बढ़ाए कुछ कदम तनाव से मुक्ति के फल का एहसास करा देते हैं। शर्त यह है कि भ्रमण को नियमित रखना है। भ्रमण के दौरान व्यक्ति प्रकृति व ईश्वर के पास होता है। भ्रमण की स्थितियाँ सतरंगी होती हैं। विशाल प्रकृति, अनंत आकाश, चहकते पक्षी, बहती ठंडी हवा, प्रातः-सायं का सुहाना समय, देव-देवालय, शांत-एकांत स्थिति, समूह-मित्र, बहता पसीना, श्रम-स्तुति, महकती बातें, बिखरती मुसकानें, विशुद्ध हास्य, लगते ठहाके, खिलखिलाहट, अट्टहास—सबकुछ मिलता है।

स्वास्थ्य के लिए दौड़ना भी श्रेष्ठ है। योगासन करना भी बेहतर है। स्वामी रामदेव द्वारा बताए गए प्राणायाम करना तो अति उत्तम है। पुराने सिने-सितारे देवानंद व रेखा का स्वास्थ्य सत्तर वर्ष के उपरांत भी नियमित योग के कारण आज भी चुस्त-दुरुस्त है।

2. अंतर्यात्रा करें व अंतर्मन की सुनें

"ज्यादातर लोग कभी अपनी अंतरात्मा की आवाज नहीं सुनते हैं।"

—स्टीफन आर. कवि

हम अपने सूक्ष्म शरीर एवं भावजगत् को व्यवस्थित करने के लिए आंतरिक अवलोकन करते हैं। शरीर एवं उपनिषद् सिखाते हैं—'यत् पिण्डे, तत् ब्रह्माण्डे'। दीपक चोपड़ा ने लिखा है—मानव देह ब्र्ह्मांड की अभिव्यक्ति है। जिन तत्त्वों और शक्तियों से ब्र्ह्मांड बना है, उन्हीं से हमारा शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा भी बने हैं। सूक्ष्म और विराट् दोनों एक ही हैं। मानव-देह और ब्रह्मांडीय-देह एक ही है। मानवीय-मस्तिष्क और ब्रह्मांडीय-मस्तिष्क एक ही हैं। यही वेदों का मूलभूत संदेश और सिद्धांत है। हम किस प्रकार सोचते हैं, महसूस करते हैं स्मरण करते हैं और कल्पना करते हैं, ये सारी बातें हमारी देह को प्रभावित करती हैं। लेकिन स्व-संवाद की कमी के कारण हम अपने से दूर चले गए हैं। स्व-संवाद का अर्थ है—आपके मन में चलने वाला वार्त्तालाप। लोग बाहर से तो अपने आपको बदल लेते हैं परंतु अंदर से वैसे ही रहते हैं। जब तक आप अपने

बारे में जो खयालात रखते हैं, उन्हें नहीं बदलते, तब तक आप अंदर से स्वयं को नहीं बदल सकते। आपके विचार आपको जो खबर देते हैं, आप अपने आपको वही मान लेते हैं। इसलिए पहले आपको अपने अंदर चलने वाले विचारों को बदलना होगा। स्व-संवाद बदलने से आप अंदर से बदल जाते हैं, यही स्व-संवाद का जादू है।

अपने शरीर के संकेतों को सुनें। हमारा शरीर अपने ऊपर होनेवाली ज्यादतियों का विरोध प्रकट करता है। शरीर की थकान, सोने की इच्छा, काम न करने का मन, सिरदर्द आदि ऐसे संकेत हैं। जब कभी पानी पीने का भाव जगे, शौच एवं पेशाब करने की इच्छा हो तो उसे तत्काल पूरा करें, संकोच की जरूरत नहीं है।

अंतःप्रेरणा सुनें और जीना सीखें। हम अपनी व्यस्तता के कारण अपने से ही बहुत दूर चले गए हैं। इस संसार में हमारा दूसरों से बहुत कम संवाद है एवं स्वयं से भी संवाद नहीं के बराबर है। हम अपने अंतर्मन के संकेतों व संदेशों को ग्रहण नहीं करते हैं। जब आप अपनी बात नहीं सुनते हैं तो दुनिया में किसी और की बात कैसे सुन सकते हैं। हम अपनी सबसे ज्यादा अनदेखी करते हैं। कई बार मनुष्य का अचेतन घटनाओं का विश्लेषण कर कुछ सूचनाएँ व संकेत देता है, लेकिन तब हम उस पर ध्यान नहीं देते हैं। आपका शरीर, मस्तिष्क, मन और आत्मा निरंतर कुछ-न-कुछ किसी-न-किसी रूप में आपसे कहते रहते हैं। अपनी अंतःप्रेरणा ही आपकी सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक है। इस स्रोत का लाभ उठाकर व्यक्ति चाहे जितनी उन्नति कर सकता हैं। पाओलो कोएलो ने एल्केमिस्ट को साफ तौर पर ऐसे संकेत ग्रहण करते हुए दिखाया है। वह प्रकृति द्वारा दिए जानेवाले संकेतों एवं लक्षणों को महत्त्व देने के कारण ही सफल होता है।

शरीर की भाषा समझें। जब हलका सरदर्द हो तो उसे दो रुपए की गोली या पेनकिलर लेकर दबाने की कोशिश न करें। अच्छा हो कि विश्राम करें। कैसी विडंबना है कि आप अपने शरीर को रोगी बनाएँ व डॉक्टर उसे ठीक करे। दवाइयाँ आपातकाल के लिए हैं। सामान्य परिस्थिति में उनका सेवन ठीक नहीं है। डॉक्टर व दवाइयाँ आपके लिए ही नहीं है; उनमें डॉक्टर व दवा बाजार की ताकतें शामिल हैं, जो आपके पक्ष में नहीं हैं।

मानव-देह जीवित मंदिर है। इसके होने से आप हैं। अस्तित्व इसके द्वारा आपको अभिव्यक्त करता है। अतः इसका ध्यान रखें। शरीर के संकेतों को अनसुना न करें। यह गूँगा जरूर है, लेकिन प्राणवान है। अतः इसे मित्र बनाएँ।

अपने शरीर से संवाद नहीं होने से हमारा उस पर नियंत्रण नहीं रहता है। ऐसे में शरीर स्वयं मालिक हो जाता है। वह एक सीमा के बाद अपनी रिपेयरिंग नहीं कर सकता है। ऐसे में हमारी उम्र घटती है। इससे बुढ़ापा शीघ्र आ जाता है।

प्रतिदिन हम भोजन करते हैं। लेकिन क्या खाना चाहिए एवं कितना खाना चाहिए, यह बहुत कम लोग जानते हैं। स्वाद के कारण हम इस शरीर पर कई बार अनावश्यक बोझ डाल देते हैं। फिर कहते हैं कि मुझे अपच है, गैस रहती है। नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. लिनस पॉलिंग ने कहा था कि आप लोग जो भोजन करते हैं, वह पच्चीस प्रतिशत आप के लिए है, शेष पिचहतर प्रतिशत भोजन आप डॉक्टरों के पेट के लिए करते हैं।

जब कभी हम नकारात्मक होते हैं तो तत्क्षण शरीर में अनेक तरह के हानिप्रद रसायन बनने लगते हैं। हमारा शरीर दुनिया की सबसे बड़ी फार्मास्युटिकल फैक्टरी है। यह अपने मस्तिष्क के कमांड पर अनेक तरह के रसायन बनाता है।

ईश्वर की सबसे बड़ी कृति इनसान है। हमारे पास सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। प्रकृति की सारी व्यवस्था है। इसके उपरांत भी हम अपने अहं व लोभवृत्ति के वश में होकर इस शरीर पर अनेक तरह के अनावश्यक बोझ लादे हुए हैं।

3. सजगता से जीएँ/ध्यान करें

पूर्ण सुखी तो बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति ही होते हैं। वे सदा आनंद में रहते हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति का ज्ञान ही अध्यात्म है। कृष्ण, बुद्ध और महावीर तो पूर्ण ज्ञानी हो सकते हैं। हम अपना प्रबंधन सुव्यवस्थित करने हेतु उनके बताए सजगता के मार्ग पर चलें तो बेहतर्है।

शरीर एवं मन को शांत कर हम चैतन्य का अनुभव कर सकते हैं। सकारात्मक मन से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है शांत मन होना। शांत मन निर्णय, विश्लेषण और व्याख्या की सीमा से परे होता है। जब आपको अपनी सच्ची पहचान का स्मरण हो जाता है, तो आप संपूर्णता की स्मृति में लौट आते हैं और आप पूरी तरह चंगे हो जाते हैं।

होश में, सजगता से प्रत्येक कार्य करते हुए हम चैतन्य को उपलब्ध होते हैं। हम मूर्च्छा में जीते हैं, उसे तोड़ना कठिन है। इसलिए धीरे-धीरे होश में जीने का प्रयास करें। यहाँ दो विधियाँ बताई जा रही हैं। प्रथम, स्नान करते हुए सजग होना प्रारंभ करें व दूसरी विधि श्वास को देखकर साक्षी बनें।

सजगता से स्नान करें

अपने को जानने हेतु नहाना अति महत्त्वपूर्ण है। संसार में नहाना ऐसा कर्म है, जिसे करने के बाद व्यक्ति पछताता नहीं है। अतः यह श्रेष्ठ कार्य है। आर्किमिडीज ने नहाते-नहाते ही खोज की थी। हम सभी प्रतिदिन नहाते हैं,

लेकिन जल्दबाजी में दो-चार मिनट में ही नहा लेते हैं। इसमें कुछ समय बढ़ाने की आवश्यकता है।

पानी हमारे शरीर को ही नहीं धोता है, बल्कि हमारे मन को भी हलका करता है। नहाते वक्त व्यक्ति अपने को दबाव मुक्त महसूस करता है। तभी तो कई लोग नहाते समय गुनगुनाते हैं। नहाते वक्त मस्ती से गुनगुनाएँ, आजादी से नहाएँ। शावर के नीचे पाँच-दस मिनट बैठना जल-चिकित्सा है। हमारा एक तिहाई शरीर जल से बना है। तभी तो प्राकृतिक चिकित्सा में अनेक तरह से जल-चिकित्सा की जाती है। 'स्नान-ध्यान' शब्द में ध्यान से पूर्व स्नान को स्थान दिया गया है। अर्थात् स्नान ध्यान की मनोदशा निर्मित कर देता है।

नहाने से नींद अच्छी आती है, भूख बढ़ती है, ऊर्जा बढ़ती है, उम्र व उत्साह भी बढ़ते हैं।

आप अपने व्यवसाय-कार्यों से निवृत्त होने के बाद नहाकर तरोताजा हो सकते हैं। नींद न आने की दशा में सोने से पूर्व नहाना भी लाभदायक है। पिकनिक आदि में नदी एवं झरने का आनंद आप सबने उठाया होगा। इस तरह के जब भी अवसर मिलें, उनका आनंद लें।

श्वास प्रक्रिया को देखें

हमारा श्वास लेने का तरीका हमारी मानसिक अवस्था के लिए जिम्मेदार है। श्वास लेने व छोड़ने का तरीका बदलकर हम अपनी मनोदशा बदलें। जब भी बोर हो रहे हों, मन व्यथित हो तो पाँच गहरे व दीर्घ श्वास लें। इससे शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ेगी व मन में चलते विचारों का प्रवाह बदलेगा। हमारी मनोदशा के लिए हमारा चिंतन भी उत्तरदायी है। गहरे अवसाद की स्थिति में दो से पाँच मिनट तक जोर-जोर से श्वास छोड़ें। इससे आपके भीतर चल रहा तूफान थम जाएगा। गहरी श्वास आपको ऊर्जावान बनाती है। इससे आप में जागृति आएगी। आप सजग होंगे। आप सजग होंगे तो आप सही निर्णय ले सकेंगे।

गहन श्वास की आवश्यकता क्यों?

पहला: जब बौद्धिक क्षमता पर कार्य करने हेतु मस्तिष्क को अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है तो हमें गहरी श्वास लेनी चाहिए। हमारे मस्तिष्क का वजन डेढ़ किलोग्राम होता है, जो हमारे शरीर के वजन का लगभग तीन प्रतिशत होता है। किंतु हमारा मस्तिष्क कुल ग्रहण की गई ऑक्सीजन का बीस से

पच्चीस प्रतिशत भाग का उपयोग करता है। गहन श्वसन द्वारा अपने मस्तिष्क की ऑक्सीजन आपूर्ति की माँग पूरी करने में मदद मिलती है।

दूसराः गहन-श्वसन आपको विश्राम देने में मदद करता है।

तीसराः नियमित प्राकृतिक श्वसन-चक्र मस्तिष्क की तरंगों के अल्फा अंश को बढ़ाने की सरलतम एवं प्रभावशाली विधि है। इससे पढ़ने, सीखने व याद करने में सहायता मिलती है।

जब हम श्वास के प्रति सजग होंगे तो धीरे-धीरे अपने समस्त शरीर की गतियों, उस पर उठनेवाली संवेदनाओं, मन में उठते विचारों व भावों के प्रति सजग होने लगेंगे। इन सब के प्रति सजगता से जीवन में स्वतः ही व्यवस्था उत्पन्न होने लगती है। तब जीवन सहज आनंद की यात्रा बन जाता है। बॉडी रिसर्च सेंटर, वाशिंगटन के निदेशक गोर्डन ने लगभग तीस वर्ष तक श्वसन-थैरेपी का अध्ययन कर बताया है कि उच्च रक्तचाप, लीवर व तनाव के रोगियों को गहरी व लंबी श्वास लेने पर काफी लाभ होता है। यहाँ तो कैंसर तक के रोगियों को यह थैरेपी दी जा रही है।

2

प्रबंधन का रहस्य: विचारों को बदलें

खुद की सोच को बदलें, मन को बदलें

"यदि आपके जीवन में बुरे लोग दिखाई दे रहे हैं और असफलता दिखाई दे रही है तो समय आया है अपने विचारों को तुरंत बदलने का।"

—अज्ञात

"तुम प्लास्टिक सर्जरी करवा सकते हो, तुम सुंदर चेहरा बनवा सकते हो, सुंदर आँखें, सुंदर नाक, तुम अपनी चमड़ी बदलवा सकते हो, तुम अपना आकार बदलवा सकते हो। इससे तुम्हारा स्वभाव नहीं बदलेगा। भीतर तुम लोभी बने रहोगे, वासना से भरे रहोगे, हिंसा, क्रोध, ईर्ष्या, शक्ति के प्रति पागलपन भरा रहेगा। इन बातों के लिए प्लास्टिक सर्जन कुछ कर नहीं सकता।"

—ओशो

विचारों का प्रभाव

राजा किसी सेठ को फाँसी पर क्यों चढ़ाना चाहता है?

हमारा मन विचारों से ही बनता है। हम मन के अनुसार अर्थात् विचारों के अनुसार चलते हैं। अतः विचारों को बदलना स्वयं को बदलने हेतु जरूरी है।

एक राजा ने अपने जन्मदिन पर नगर के प्रमुख साहूकारों को भोज दिया। भोज के दौरान प्रत्येक सेठ से राजा स्वयं मिला। राजा सभी सेठों से मिलकर प्रसन्न हुआ। लेकिन एक सेठ से मिलने पर राजा के मन में भाव आया कि इस सेठ को फाँसी दे दी जानी चाहिए। राजा ने तब तो कुछ नहीं कहा, लेकिन इस तरह का विचार मन में उठने का कारण खोजने लगा।

दूसरे दिन राजा ने अपने मंत्रियों से अपने मन में उक्त विचार आने का कारण पूछा। एक बुद्धिमान मंत्री ने कहा कि इसका पता लगाने का वक्त दिया जाए। मंत्री ने अपने गुप्तचरों से उस सेठ के बारे में जानकारी इकट्ठी करवाई।

कुछ दिनों बाद गुप्तचरों ने बताया कि वह सेठ चंदन की लकड़ी का व्यापारी है। लेकिन विगत तीन-चार माह से उसका व्यवसाय ठीक नहीं चल रहा था। अतः वह सोचता है कि राजा की मृत्यु हो जाए तो उसकी ढेर सारी चंदन की लकड़ी बिक जाए। अतः वह राजा की मौत की कामना करने लगा। सम्राट् के सेठ से

मिलने पर सम्राट् के अचेतन मन ने सेठ के मन के भावों को पढ़कर प्रतिक्रिया की कि सेठ को फाँसी पर चढ़ाना चाहिए।

मंत्री बड़ा चतुर था। उसने सोचा, सम्राट् को यह बता दिया तो सेठ अनावश्यक खतरे में पड़ जाएगा। इसलिए उसने एक तरकीब सोची। सेठ से प्रतिदिन दो किलो चंदन की लकड़ी महलों में उपयोग हेतु खरीदनी शुरु की। अब प्रतिदिन दो किलो चंदन की लकड़ी बिकने लगी। सेठ सोचने लगा कि राजा चिरायु हो। उससे उसका व्यवसाय हो रहा है। राजा के बदलने पर नया राजा रोज लकड़ी खरीदे या नहीं, इसलिए वह राजा की लंबी उम्र की कामना करने लगा।

राजा ने अगले वर्ष फिर अपने जन्मदिन पर बड़े सेठों को भोजन पर बुलाया। इस बार राजा उस सेठ से व्यक्तिगत रूप से मिले तो उसे लगा, सेठ बहुत अच्छा है। इसकी आयु लंबी होनी चाहिए। अब इस तरह के विचार आने का कारण राजा ने फिर मंत्री से पूछा। मंत्री ने बताया कि राजा हम सब का मन बहुत सूक्ष्म है, हमारा अचेतन मन सामने वाले के मन में गुप्त चलते विचारों को चुपचाप पकड़ लेता है। उस पर स्वतः प्रतिक्रिया करता है। इस बार सेठ आप की आयु बढ़ाने की प्रार्थना मन-ही-मन करता था। चूँकि इससे उसका व्यवसाय चल निकला था। प्रतिदिन दो किलो चंदन की लकड़ी बिक रही थी। अतः उसके मन में चलते गुप्त विचारों को आपका मन पकड़ लेता है।

हम विश्वास कर विश्वास पाते हैं। अविश्वास कर दूसरे को अविश्वास करने का अवसर देते हैं। हम यदि जीवन में सुख चाहते हैं तो हमें दूसरों पर बिना कारण अविश्वास नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ अभी चारों तरफ अविश्वास है। अविश्वास संदेह को बढ़ाताहै।

हमें सकारात्मक होने के लिए बिना कारण किसी पर भी अविश्वास नहीं करना चाहिए। जीवन में सफल होने के लिए दूसरों पर भरोसा करना चाहिए। यथापि इसमें कभी-कभी अस्सी-बीस का सिद्धांत लागू करें। भरोसा करेंगे तो आप के काम बनेंगे। कभी ठोकर लगे तो इसे अपवाद मान लें। बिना परीक्षण किए सब को गलत या चोर मानना गलत है।

जब हम किसी से घृणा करते हैं तो हम अनजाने ही उस व्यक्ति को घृणा करने के लिए प्रेरित करते हैं। हम सब के व्यक्तित्व में कुछ गुण जन्मजात होते हैं। उनको तो बदलना थोड़ा कठिन है। लेकिन कुछ गुण हम यहीं पर सीखते हैं, उन्हें बदलना आसान होता है। यदि कोई पूरी तरह जन्मजात नकारात्मक है तो उसे हम इस तरह सकारात्मक विचारकर नहीं बदल सकते हैं। लेकिन जिसने वातावरण से नकारात्मकता सीखी है, उसे हम अच्छे विचार कर बदल सकते हैं।

अविश्वास व किसी को भला मानस न मानना हमारी प्रवृत्ति है। इसे बदलने हेतु आत्म-प्रबंधन अत्यंत जरूरी है। इसको आप अपने जीवन में देखें। आप अपने जिस भी रिश्तेदार से नफरत करते हैं या पीठ पीछे उसकी बुराई करते हैं तो वह भी आपकी पीठ पीछे बुराई करता होगा। मुख पर तो वह भी आपकी तारीफ करता होगा और आप भी उसकी तारीफ करते होंगे, पर आपकी अनुपस्थिति में वह आपकी खिल्ली उड़ाता होगा और आप उसका मजाक बनाते होंगे। अर्थात् हमारी तरंगें संप्रेषित होती हैं।

हम अपनी बैठक में दूसरों के गंदे विचार क्यों स्वीकारें

मेरे घर पर आकर कोई कचरा फेंक नहीं सकता। एक कागज या गंदगी जो उड़कर आती है तुरंत हम सफाई कर देते हैं। लेकिन हमारी बैठक में आकर कोई भी गलत विचार दे जाता है तो उसे हम रोकते नहीं हैं। हमारे कितने अपने आकर हमारी बैठक में दूसरों की बुराई, निंदा, व्यर्थ की बातें करते हैं, लेकिन उन्हें हम रोकते नहीं हैं। वे हमारी खोपड़ी में बहुत से फालतू विचार भर जाते हैं। लेकिन उसकी सफाई कैसे करे, हमें पता नहीं होता है। कालांतर में वे ही विचार हमारे मन में उमड़-घुमड़कर हमें घटिया बनाते हैं। इसको हम समझ नहीं पाते हैं। मेरे मन में कई बार आता है कि 'कृपया राजनीतिज्ञों व पाखंडी साधुओं की चर्चा यहाँ न करें' ऐसा अपनी बैठक में लिख दूँ। मेरे सामने अनुपस्थित व्यक्ति की बुराई न करें। मेरी खोपड़ी में भूसा न भरें। चाहे बैठक में गंदे पाँव लेकर आ जाएँ, उसकी सफाई संभव है। लेकिन अभी मेरा मस्तिष्क आपके भीतर के कूड़े को बरदाश्त करने की क्षमता नहीं रखता है। मेरी खोपड़ी कोई कचरा पात्र नहीं है। इसमें किसी को गंदे विचार भरने का अधिकार नहीं है। इसे गंदा करने का किसी को कोई हक नहीं है।

सोचना एक रासायनिक क्रिया

काम की इच्छा से रसायन बनते हैं, जिनसे देह प्रभावित होती है। इच्छा-पूर्ति पर भिन्न रसायन बनते हैं। तब दूसरी तरह के विचार आते हैं। सोचना रसायनों के अधीन है। यह हम उपर्युक्त उदाहरण में साफ-साफ देख सकते हैं।

गुस्से में भिन्न तरह के रसायन बनते हैं। तब भिन्न तरह के विचार मन में उमड़ते हैं। गुस्सा शांत होने पर उन रसायनों का निर्माण बंद हो जाता है। विचार-प्रवाह स्वतः ही भिन्न हो जाता है। क्षमा के भाव आने पर हार्मोंस कुछ भिन्न स्राव छोड़ते हैं। तब दूसरी तरह के विचार जन्म लेते हैं।

विचार व्यक्ति के हाथ में नहीं हैं। कब कौन से विचार आएँगे। यह सब रसायन से जुड़ा हुआ है। विचार एक रासायनिक प्रक्रिया है। रसायन चाहे जैसे व्यक्ति को भटकाते-दौड़ाते हैं। विचार रसायनों की कठपुतली है।

विज्ञान जिसे रसायन कहता है, वह जैन दर्शन की भाषा में कर्म है, और भारतीय दर्शन की भाषा में प्रभुकृपा है। सनातन दर्शन प्रकृति-दर्शन है। रसायन (हार्मोंस) हार्मोंस का अर्थ ग्रंथि होता है। रसायन प्राकृतिक नियम के अनुसार ही विचारों की व्याख्या करताहै।

अपनी सोच को बदलें

जीवन में विचारों का बहुत महत्त्व है। हम सोच से संचालित होते हैं। हम सोच के आधार पर ही प्रतिक्रिया करते हैं। किसी का मूल्यांकन भी सोच के आधार पर ही करते हैं। समय का आधार सोच है। हमारी सोच पूर्व अवधारणाओं पर आधारित होती है। जैसे मेरी धारणा है कि जबरदस्ती शादी करवाकर मुझे नुकसान पहुँचाया। मेरी सारी असफलताओं के लिए मेरी शादी जिम्मेदार है। यह एक गलत धारणा है।

ऐसी धारणा को बदलकर ही सुखी रहा जा सकता है। इसे कैसे बदलना है?

पहले सही सोचना सीखें। सोच के प्रति जागें। तब सोच स्वतः ही सकारात्मक हो जाएगी। स्वयं का बदलने के लिए अपनी सोच को बदलें।

जीवन में विचारों का बहुत महत्त्व है। हम सोच से ही संचालित होते हैं। हम सोच के आधार पर ही प्रतिक्रिया करते हैं। हमारी सोच के आधार पर ही शरीर हमारा कर्म करता है। सोच से ही आदतें बनती हैं। किसी का मूल्यांकन भी अपनी सोच के आधार पर ही करते हैं। समझ का आधार सोच है। नासमझी से ही खीर टेढ़ी हो जाती है। ऐसे ही निष्कर्ष हमें उलझाते हैं। इन सबका कारण हमारी सोच है। हमारी सोच पूर्व धारणाओं पर आधारित होती है। जैसी मेरी धारणा होती है उसी अनुरूप मैं सोच पाता हूँ।

इसी सोच को बदलकर हम सुखी हो सकते हैं। जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण है परिवर्तन के लिए सोच को बदलना। इसी पर प्राचीन कहावत है—

> एक विचार को बोइए, एक कर्म को जन्म दीजिए,
>
> एक कर्म को बोइए, एक आदत को जन्म दीजिए,

एक आदत को बोइए, एक चरित्र को जन्म दीजिए,

एक चरित्र को बोइए, एक सफलता को जन्म दीजिए।

अपने विचार बदलने का विज्ञान

मन में रची-बसी पुरानी आधारहीन मान्यताओं को बदलकर हम अपने मन का प्रबंधन बेहतर कर सकते हैं। वे मान्यताएँ हमें सही चीजें देखने नहीं देती हैं। इनको बदलने पर हम बदल सकते हैं। इनके होते हुए हम अपने में परिवर्तन नहीं ला सकते हैं। इनका हमारे जीवन पर बहुत नियंत्रण है। ये आपके सोच, दृष्टि, व्यवहार, चरित्र व आचरण के लिए जिम्मेदार हैं, इनकी भूमिका हमारे जीवन में व्यापक है। ये ही हमें जैसे है वैसे बने रहने के लिए बाध्य करती है। इनके होते हुए जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हो सकते हैं। इनको बदलना नितांत जरूरी है। इनके परिवर्तन से हमारा प्रबंधन स्वतः ठीक हो जाएगा।

प्रत्येक स्थूल के पीछे सूक्ष्म का हाथ है। जो भी स्थूल है उसका कहीं-न-कहीं कारण सूक्ष्म में है। प्रकट के पीछे अप्रकट जरूर है। हमें दिखाई नहीं दे रहा है, इसका अर्थ यह नहीं है कि वह नहीं है। जीवन में स्थूल ही सबकुछ नहीं है। कार्य-कारण सिद्धांत के अनुसार भी जो अभी हुआ है या हो रहा है, उसका कारण जरूर किसी-न-किसी रूप में है। होनी का कारण विज्ञान तो नहीं कहता है कि कुछ नहीं होता है। प्रत्येक विचार के पीछे हेतु, कारण, आधार, हार्मोंस, कर्म कुछ-न-कुछ होता है।

विचारों को बदलने के उपाय

1. दृश्य ही सत्य नहीं है, अदृश्य बंधन को पहचानो

शरीर दृश्य है। यह किसी अदृश्य एवं सूक्ष्म से यात्रा कर इतना बड़ा बना है। स्वास्थ्य व तंदुरुस्ती इसकी रक्षा हेतु जरूरी है। हम मन-मस्तिष्क का पूरा उपयोग नहीं करते हैं। इनकी क्षमता बढ़ानी व उपयोग में लानी है। शरीर का अदृश्य छोर आत्मा है और आत्मा का दृश्य छोर शरीर है। आत्मा निराकार है, शरीर का प्रारंभ यहीं से हुआ है। शरीर का अदृश्य छोर आत्मा है, इसका संबंध हमारे जीवन मूल्यों से है। हम तीन तलों में जीते हैं। हमारा पहला तल दृश्य शरीर, दूसरा तल मन-मस्तिष्क व तीसरा तल चेतना या आत्मा का है। हम इन तीनों का जोड़ हैं। पूरा मनुष्य जीवन इन सब का मिला-जुला रूप है। हमें इन तीनों को लयबद्ध व तालबद्ध रखना है व तीनों में परस्पर सामंजस्य भी रखना है। मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ प्रबंधन इन तीनों का विकास, संवर्धन व संरक्षण है। इनमें सामंजस्य से ही हमारा जीवन खिलता है। तीनों साथ कैसे विकसित हो इसमें

कठिनाई यह है कि तीनों की मूल प्रकृति, शक्ति एवं स्वभाव, में रात-दिन का अंतर है। कई बार हम एक पर ध्यान देते हैं तो दूसरा विकृत हो जाता है। इसका परस्पर संतुलन ही आत्म-प्रबंधन है।

जगत् में दिखनेवाला ही अर्थयुक्त नहीं है, जो नहीं दिखता है वह कई बार अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जीवन में जो दृश्य प्रमाण को ही सच मानते हैं, वे अधूरे हैं। शायद यहाँ सारभूत अदृश्य है, सूक्ष्म है, अरूपी है। जीवन में सारभूत दिखाई न देनेवाला है। इन सबका कारण दिख जाए—वह हम जान पाएँ—यह जरूरी नहीं है। इसको पहचानने वाले जीवन के सत्य को पहचान पाते हैं। इसी पर ओशो द्वारा सुनाई गई एक कहानी याद आतीहै।

एक युवा फकीर प्रभु की खोज में पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा था। वह किसी मार्गदर्शक की तलाश में था, जो कोई उसकी प्रेरणा बन सके, कोई उसे जीवन के रास्ते की दिशा बता सके। आखिर उसे एक वृद्ध संन्यासी मिल गया राह पर ही, उसने वृद्ध संन्यासी के साथ सहयात्री होने की इच्छा प्रकट की। लेकिन उस वृद्ध संन्यासी ने कहा, "मेरी एक शर्त है, मैं जो कुछ भी करूँ, तुम उसके संबंध में धैर्य रखोगे और प्रश्न नहीं करोगे। मैं जो कुछ भी करूँ, उस संबंध में मैं न बताऊँ, तब तक तुम पूछ न सकोगे। अगर इतना धैर्य और संयम रख सको तो मेरे साथ चल सकते हो।"

उस फकीर ने यह शर्त स्वीकार कर ली और वे दोनों संन्यासी यात्रा पर निकले। पहली ही रात वे एक नदी के किनारे सोये और सुबह उस नदी किनारे पर बँधी हुई नाव में बैठकर नदी पार की। मल्लाह ने उन्हें संन्यासी समझकर मुफ्त नदी के पार पहुँचा दिया। नदी के पार पहुँचते-पहुँचते युवा संन्यासी ने देखा कि बूढा संन्यासी चोरी-छिपे नाव में छेद कर रहा है। नाव का मल्लाह तो नदी के उस तरफ ले जा रहा है और बूढ़ा संन्यासी नाव में छेद कर रहा है। वह युवा संन्यासी बहुत हैरान हुआ—यह उपकार का बदला? मुफ्त में उन्हें नदी पार करवाई जा रही है। उस गरीब मल्लाह की नाव में किया जा रहा यह छेद?

भूल गया शर्त को। कल रात ही शर्त तय की थी। नाव से उतरकर वे दो कदम भी आगे नहीं बढें होंगे कि युवा संन्यासी ने पूछा, "सुनिए! यह तो आश्चर्य की बात हुई कि एक संन्यासी होकर जिस मल्लाह ने प्रेम से नदी पार करवाई है, मुफ्त सेवा की है सुबह-सुबह, उसकी नाव में छेद करने की बात मेरी समझ में नहीं आती, कि उसकी नाव में आप छेद करें? यह कौन सा बदला हुआ—नेकी के लिए बदी से, भलाई का बुराई से?"

उस बूढे संन्यासी ने कहा, "शर्त तोड़ दी तुमने। साँझ को हमने तय किया था कि तुम पूछोगे नहीं। मझसे अलग हो जाओ। अगर अलग होते हो तो मैं कारण

बता देता हूँ और अगर साथ चलना हो तो आगे ध्यान रहे, दुबारा पूछा तो फिर साथ टूट जाएगा।"

युवा संन्यासी को खयाल आया। उसने क्षमा माँगी। उसे हैरानी हुई कि वह इतना भी संयम न रख सका, इतना भी धैर्य न रख सका। लेकिन दूसरे दिन फिर संयम टूटने की नौबत आ गई। वे एक जंगल से गुजर रहे थे, उस जंगल में उस देश का सम्राट् शिकार खेलने आया। उसने संन्यासियों को देखकर बहुत आदर किया, उन्हें अपने घोड़ों पर सवार किया और वे सब राजधानी की तरफ वापस लौटने लगे। वृद्ध संन्यासी के साथ राजा ने अपने एकमात्र पुत्र युवा राजकुमार को घोड़े पर बिठा दिया। घोड़े राजधानी की तरफ दौड़ने लगे। राजा के घोड़े आगे निकल गए। दोनों संन्यासियों के घोड़े पीछे रह गए। बूढ़े संन्यासी के साथ राजा का पुत्र भी बैठा हुआ है, वह एकमात्र बेटा था राजा का। जब वे दोनों अकेले रह गए, उस बूढ़े संन्यासी ने उस युवा राजकुमार को नीचे उतारा और उसके हाथ को मरोड़कर तोड़ दिया। उसे झाड़ी में धक्का देकर अपने संन्यासी साथी से कहा, "भागो जल्दी।"

यह तो बरदाश्त के बाहर था। फिर भूल गया शर्त। उसने कहा, "हैरानी की बात है यह कि जिस राजा ने हमारा स्वागत किया, घोड़ों पर सवारी दी, महलों में ठहरने का निमंत्रण दिया—जिसने इतना विश्वास किया, जिसने अपने बेटे के घोड़े पर तुम्हें बिठाया, उसके एकमात्र बेटे का हाथ मरोड़कर तुम जंगल में छोड़ आए हो। यह क्या है? यह मेरी समझ के बाहर है। मैं इसका उत्तर चाहता हूँ।"

बूढ़े संन्यासी ने कहा, "तुमने फिर शर्त तोड़ दी। और मैंने कहा था कि दूसरी बार तुम शर्त तोड़ोगे तो अलग हो जाएँगे। अब हम अलग हो जाते हैं, और दोनों प्रश्नों का उत्तर मैं तुम्हें दिए देता हूँ। जाओ लौटकर पता लगाओ—तुम्हें ज्ञात होगा कि वह नाव वह मल्लाह इसी किनारे पर रात को छोड़ गया। रात को एक गाँव में डाका डालने वाले लोग उसी नाव पर सवार होकर डाका डालेंगे। मैं उसमें छेद कर आया हूँ। एक गाँव में डाका बच जाएगा। राजा के लड़के को मैंने हाथ मरोड़कर छोड़ दिया है जंगल में। तुम पता लगाना—यह राजा अत्यंत दुष्ट, क्रूर और आततायी है। इसका लड़का उससे भी क्रूर और आततायी होने को है। लेकिन उस राज्य का एक नियम है कि गद्दी पर वही बैठ सकता है, जिसके सब अंग ठीक हों। मैंने उसका हाथ मरोड़ दिया है, वह अपंग हो गया, अब वह गद्दी पर बैठने का अधिकारी नहीं रहा। सैकड़ों वर्षों से इस देश की प्रजा पीड़ित है, वह इस परंपरा से मुक्त हो सकेगी।

"अब तुम अलग हो जाओ। मैं क्षमा चाहता हूँ। तुम्हें, जो प्रकट दिखाई पड़ता है, वही दिखाई पड़ता है; जो अप्रकट है, जो अदृश्य है, वह दिखाई नहीं पड़ता।

और जो आदमी प्रकट पर ही ठहर जाता है, वह कभी सत्य की खोज नहीं कर सकता है। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ; हमारे रास्ते अलग जाते हैं।"

2. जल्दबाजी न करें-हवाई जहाज में न दौड़ें

हमें जीवन में कभी भी समय नहीं मिलता है। हम सभी भागते रहते हैं। इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी बीमारी जल्दबाजी है। तभी तो मुल्ला नसरुद्दीन को हवाई जहाज में दौड़ते देखकर एयर होस्टेस ने पूछा, "सर, आप दौड़ क्यों रहे हैं?" मुल्ला ने बताया कि उन्हें जल्दी पहुँचना है। सोचिए, रुकिए हम सब भी इसी तरह व्यर्थ में कहीं दौड़ तो नहीं रहे हैं। इस तरह की जल्दबाजी कार्य में विघ्न पैदा करती है।

हम सभी को आज फुरसत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य विशेष से शीघ्र ही मुक्त हो जाना चाहता है। हम अपने हाथ के कार्य को करते हुए भी दौड़ रहे हैं। हम जल्दी से इसे निपटाना चाहते हैं। हममें से अस्सी प्रतिशत लोग सतत भाग रहे हैं।

इस जल्दबाजी के परिणाम घातक हैं। हमारा पूरा शरीर यानी शरीर के आंतरिक अंग सब शीघ्रता में हैं। इससे उनमें थकान भरती है व उम्र बढ़ती है। मन भागता है। जल्दबाजी से हम बेचैन हो जाते हैं। हाथ का काम भी पूरी ऊर्जा व सघनता से नहीं कर पाते हैं। इससे कार्य की गुणवत्ता कम होती है व कई बार कार्य बिगड़ जाता है। इससे परिणाम ही उलटे आते हैं। मैंने अपने जीवन में जल्दबाजी से बहुत खोया है। कई बार तो अपने कंप्यूटर में डिलीट का बटन दबा देने से अपने आलेख खोए हैं। इसी से आकुलता जन्म लेती है।

3. अतिवादी सोच

सोच को दूसरे छोर पर मत पहुँचाओ। किसी भी वस्तु को अतिवादी ढंग से मत देखो। अतिवाद ठीक नहीं है। मध्यम सोच विकसित करो। सत्य किसी भी अति पर नहीं होता है। सभी तरह की अति से बचो। हम अधिकतर सोचते हुए एक अति पर चले जाते हैं। थोड़े तटस्थ रहो। सत्य शून्य एवं सौ की अति पर नहीं होता है, शून्य और सौ के मध्य निन्यानबे अवसर और होते हैं। जीवन का साधारण नियम है कि हमें प्रायः शहद एवं दंश साथ-साथ मिलते हैं।

मनुष्य एकदम पूरा शैतान भी नहीं है तो भगवान् भी नहीं है। वह इन दोनों के बीच हमेशा झूलता रहता है। हमारे कई निर्णय अतिवादी सोच के कारण सत्य से परे हो जाते हैं। अतिवादी सोच से ही परिजन कभी घोर स्वार्थी व दुश्मन नजर आते

हैं। जबकि न वे बड़े अपराधी हैं न मात्र मतलबी। उनके दिल में भी इनसानियत है। आपका जीवन साथी न दुष्ट न ही संत है। उसे अपना समय अच्छी तरह निकालने व कई बार आपकी खुशी के लिए भी थोड़ी-बहुत चालाकी करनी पड़ती है। आपके बच्चे न भक्त प्रह्लाद हैं, न शातिर अपराधी। उनकी अपनी जिंदगी है। शून्य से लेकर सौ के बीच निन्यानबे अवसर, सीढ़ियाँ और होती हैं।

इस विचार को बदलकर ही हम सुखी हो सकते हैं। इसको कैसे बदलना?

पहले सही सोचना सीखें, सोच के प्रति जागें तब सोच स्वतः ही सकारात्मक हो जाएगी।

4. आप अपने डिब्बे से बहार होकर सोचिए

व्यक्ति को अपने दायरे से बाहर आकर सोचना चाहिए। सीमा से बाहर निकले बिना सृजनशील नहीं हो सकते हैं। लकीर पर चलनेवाला आदमी विश्वासों में जीता है। उसका मस्तिष्क बंद रहता है। जीवन में नया काम करने के लिए अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग जरूरी है। तभी तो आइंस्टीन ने कल्पना-शक्ति को बुद्धि से भी श्रेष्ठ बताया है। व्यक्ति को अपने पंख खुले रखने चाहिए, ताकि आसमान में उड़ सके। कुएँ का मेढक न रहें। नए तरीके से, नई दृष्टि से, नया सोचें व बृहत् सोचे।

5. निंदा न करें, तुलना न करें

एक बार कृष्णमूर्ति से किसी ने नरक के बारे में पूछा। कृष्णमूर्ति ने तब बताया कि आकाश में नरक नाम की जगह नहीं है। लेकिन तुलना करते वक्त हम अपने मन में नरक का निर्माण कर लेते हैं। दरअसल, तुलना करने का हमें शौक है, जिसकी जड़ में फैसला सुनाने की बलवती इच्छा है। हम ईर्ष्या एवं लालच के कारण प्रतिस्पर्धा में जीते हैं एवं प्रतिस्पर्धा के कारण तुलना करते रहते हैं। हमारे भीतर एक न्यायालय सदैव धड़कता रहता है। अपने गुनाहों को भूलकर हमें न्यायाधीश की कुरसी पर बैठना अच्छा लगता है। जीवन में तुलना सदैव स्वयं से करो।

3

खुद का प्रबंधन कैसे करें

> *''हम संसार के घटनाक्रम और समाज में उत्पन्न हो रही उथल-पुथल को अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकते; परंतु हम अपने अंदर इतना मनोबल अवश्य उत्पन्न कर सकते हैं कि उनका कोई प्रभाव हमें किसी प्रकार भी विचलित न कर सके।''*
>
> *—डॉ. राधाकृष्णन*

हमारा जीवन कहाँ व कैसे बीतता है

हमें अव्यवस्थित, असंतुष्ट किसने बना रखा है? हमारा अपने जीवन में अपना क्या है? हम पूरे जीवन में प्यार माँगते ही रहते हैं; न प्यार किसी को देते हैं न ही प्यार पाते हैं। हमारी चाहतें, हमारे सपने, हमारे मूल्य, हमारे संघर्ष—ये सब स्व-प्रबंधन के बिना अर्थहीन हो रहे हैं और समस्या पैदा कर रहे हैं। स्व-प्रबंधन इन्हें वरदान बना देता है। इमर्सन ने लिखा है कि प्रत्येक मनुष्य एक बरबाद परमात्मा है। प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है, परंतु मूर्खों जैसा अभिनय कर रहा है। तभी तो वाल्टर टैंपिल ने कहा है कि केवल मनुष्य ही रोता हुआ पैदा होता है और निराशा में मरता है।

मैंने एक कहानी सुनी है। प्रारंभ में प्राणियों को ईश्वर ने चालीस-चालीस वर्ष की उम्र दी थी। लोभवश वह और उम्र चाहता था। मनुष्य को अपनी उम्र कम नजर आ रही थी। गधे को भी उम्र चालीस वर्ष मिली थी। वह दूसरों का बोझ ढोने को व्यर्थ मानते हुए उम्र घटाने का निवेदन लेकर हाजिर था। ईश्वर ने गधे की बीस वर्ष की उम्र मानव को देना स्वीकार कर लिया। तब से हम चालीस वर्ष के बाद गधे की तरह जिम्मेदारियों का वहन करते हैं। बच्चों की शादी, घर का निर्माण, धन जोड़ने में डूबे रहते हैं।

इधर कुत्ते को भी अपनी उम्र चालीस वर्ष व्यर्थ ही नजर आती थी। सारे समय भौंकना-ही-भौंकना। अतः वह भी प्रभु के दरबार में उम्र आधी कराने जा पहुँचा। आदमी फिर उम्र लेने को तैयार था, जो बीस वर्ष कुत्ते की उम्र ले बैठा। तभी तो साठ वर्ष के बाद बूढ़े नसीहत देते रहते हैं और अपने परिजन उन्हें भौंकने वाला कुत्ता मानते रहते हैं।

इधर उल्लू भी अपनी उम्र आधी कराने पहुँच गया। ईश्वर ने आदमी से फिर पूछा। वह फिर उसकी उम्र लेने को तैयार था। इस तरह अस्सी वर्ष के बाद की

उम्र उल्लू की उम्र ले बैठा। तभी तो अस्सी वर्ष के बाद बुढ़ापे में न सुनाई देता है न अधिक बोल सकता है, न नींद आती है न विश्राम कर पाता है। बस खाट पर बैठे-बैठे उल्लू की तरह देखता रहता है।

भय पर आधारित जीवन

हम भय के कारण सुचारु रूप से जीवन प्रबंध नहीं कर पाते हैं। मनुष्य भय पर आधारित जीवन जीता है। हमारे सारे क्रियाकलापों, विचारों के पीछे भय होता है। इसलिए भय को जीतना बहुत जरूरी है।

मित्रो! क्या हम भी अपने शेष जीवन ऐसे ही गुजारना चाहते हैं? क्या शिकायतें करते हुए जीना और निराशा के साथ मरना ही हमारी नियति है?

आधुनिक विज्ञान ने अनेक तरह से शोध कर बताया है कि मानव देह एक सौ पचास वर्ष तक आराम से जीवित रह सकती है। लेकिन हम जाने-अनजाने उसके साथ दुर्व्यवहार कर उसे चालीस वर्ष में थका देते हैं। आज चालीस वर्ष के बाद प्रत्येक व्यक्ति को कोई-न-कोई रोग हो जाता है। किसी को बी.पी. है तो कोई डाइबिटीज का शिकार है। किसी को खाना नहीं पचता है तो कोई थक जाता है।

वे कौन से कारण हैं जो आपको व्यवस्थित नहीं होने देते हैं? इसमें बाधाएँ क्या हैं?

हम अपनी आदतों में जीते हैं। स्वयं को कुछ समझ ही नहीं पड़ता है। हम एक तरह की बेहोशी में जीते चले जाते हैं। समय निकल जाता है। चौबीस घंटे विचारों में डूबे रहते हैं। एक के बाद एक कार्यक्रम चलते हैं। खुद को परखकर स्वयं को बदलने का भाव नहीं आता है।

दूसरों को दोष देने में जीवन चला जाता है। दूसरों से तुलना कर दुःख उठाते हैं। दूसरों की निंदा में खूब रस आता है। अपनी हार दूसरों के कारण है। मेरी जिंदगी दूसरों ने बिगाड़ी है, इस तरह के विचार कर दूसरों को दोष देते हैं। वास्तव में इस तरह स्वयं को धोखा देते रहते हैं।

स्व-प्रबंधन में सबसे बड़ी बाधाः अपनी ही छवि व सोच से तादात्मीकरण

जीवन में सबसे बड़ी भूल अपनी प्रकृति को यथार्थ में नहीं जानना है एवं अपनी ही छवि व सोच को सत्य मानना। हमारी बुद्धि सच की छवि को सच्चाई होने का भ्रम पाल लेती है और यही छवि सच को ढक लेती है। हमारी छवि अपनी

व्याख्याओं की रचना है। हम अपनी इंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर सोचते हैं, फिर उनको व्याख्यायित करते हैं। इस भूल के कारण हम अपना प्रबंधन ठीक से नहीं कर पाते हैं।

हम जगत् को अपनी इंद्रियों द्वारा देखते हैं। इसके अनुसार इस जगत् में यथार्थ वही होता है, जिसे हम अपनी आँखों से देख पाते हैं, कानों से सुन पाते हैं, नाक से सूँघ सकते हैं, अपनी जीभ से जिसका स्वाद चख पाते हैं या हाथों से जिसे छू सकते हैं। यदि कोई ऊर्जा अथवा सूचना इंद्रियातीत होती तो हम समझने लगते हैं कि शायद यह है ही नहीं। ऐसे में बुद्धि अपनी तार्किकता के दम पर इस गलत यथार्थ को सही ठहराती है। अर्थात् ऐंद्रिक अनुभव पूरी तरह से मायावी होता है, ठीक किसी कल्पना या स्वप्न की तरह। क्या वास्तव में लाल रंग जैसा कुछ है? हम जो रंग देखते हैं; वह दरअसल प्रकाश की एक विशेष तरंग होती है और जो हमारी-आपकी नजरों में दिखाई देता है, वह सचमुच मौजूद प्रकाश का एक मामूली अंश भर है। आखिर कब तक हम मायावी संसार से चिपके रह सकते हैं? हमें लगता है कि हम वह शरीर हैं, जिसे हमारी इंद्रियाँ देश-काल में टटोल सकती हैं, लेकिन सचमुच हमारा शरीर अदृश्य तरंगों का क्षेत्र है; जिनकी देश-काल में कोई सीमाएँ नहीं होती।

इंद्रियों की एक सीमा है। जैसाकि हमारी आँखें बताती हैं कि पृथ्वी चपटी है, लेकिन अब तो कोई इस पर विश्वास नहीं करता कि पृथ्वी चपटी है। खगोल विज्ञान कहता है पृथ्वी गोल है। ऐंद्रिक अनुभव हमें बताता है कि जिस धरती पर हम खड़े हैं, वह स्थिर है। लेकिन आज विज्ञान के जरिए हम सब जानते हैं कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है और बाहरी अंतरिक्ष में हजारों मील प्रति घंटे की रफ्तार से बढ़ रही है। इंद्रियजनित अनुभव हमें बताते हैं कि हम जिन वस्तुओं को देख रहे हैं, वे एकदम ठोस हैं, लेकिन यह सच नहीं है। हम जानते हैं कि वस्तुएँ परमाणुओं से बनी होती हैं, जो खुद व्यापक रिक्त अंतरिक्ष में घूमने वाले तत्त्वों से निर्मित होते हैं। वे अट्ठानबे प्रतिशत रिक्त व दो प्रतिशत ही ठोस हैं। इससे स्पष्ट है कि इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान सीमित है, सही नहीं है। अर्थात् इंद्रियों द्वारा भौतिक जगत् का अनुभव सही नहीं है। जो समझ में आता है, वह एक मान्यता है, सत्य नहीं होने के कारण वह अंधविश्वास है; क्योंकि हमने अपनी इंद्रियों पर भरोसा करना सीखा है। यह ब्रह्मांड असल में अव्यवस्थित ऊर्जा का एक घोल है और हम अपनी पाँच इंद्रियों से इसे आत्मसात् करते रहते हैं तथा अपने चेतन में इसे भौतिक यथार्थ में मान बैठे हैं। हमारी इंद्रियाँ निराकार ऊर्जा को बनावट, रंग, सुगंध और स्वाद में बदलती हैं। इस ऊर्जा-घोल की जैसी व्याख्या हम कर पाते हैं, उससे ही हमारा यथार्थ बनता है और यही हमारे प्रत्यक्ष अनुभवों को रचता है। इसे ही हम सत्य मानकर चलते हैं। यह हमारा सबसे

बड़ा अज्ञान है। दूसरा इन इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान की व्याख्या अपने सीखे हुए ज्ञान से करते हैं। इस व्याख्या को हम सही मान लेते हैं। इस प्रकार हम अपना यथार्थ रच लेते हैं व वास्तविक यथार्थ को जान नहीं पाते हैं। अर्थात् हमारी व्याख्या हमारे ही गले की फाँसी बन जाती है। लेकिन इसे हम पहचान नहीं पाते हैं। हम अपनी व्याख्या पर यकीन कर तदनुसार कार्य करते रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम स्वयं को यथार्थ रूप में नहीं जानते हैं। हम मात्र शरीर नहीं हैं। देश-काल में अभिव्यक्त होने के कारण शरीर ही सत्य नहीं है। शरीर को बनाने वाली सत्ता महत्त्वपूर्ण है। मन को रचने वाली कोई सत्ता है। उस मेधा की अनदेखी ठीक नहीं है। वह ही ब्रह्म है, चेतन है, सत्य है, प्रकृति है।

भौतिकवाद ही वास्तविक बना हुआ है। मान्यताओं का चक्र दरअसल वास्तविकता के निर्णायक परीक्षण के रूप में इंद्रियजनित अनुभवों के चलते पैदा होते हैं।

बहुत संभव है कि हम जिस छवि से जोड़कर खुद को देखते हैं, वह हम हैं ही नहीं या फिर हम शरीर भी नहीं हैं। तब हम कम-से-कम अपने विचार और अहसास तो होंगे ही, लेकिन कौन ईमानदारी से, दावे के साथ कह सकता है कि आखिर ये विचार और अहसास आते कहाँ से हैं? इनका स्रोत क्या है और ये कहाँ विलीन हो जाते हैं?

जो नहीं है, उसे वैसा धारणाओं के कारण मान लेते हैं। जैसे कि हम मात्र शरीर नहीं हैं, इसके अतिरिक्त भी कुछ हैं। लेकिन स्वयं को शरीर ही मान लेते हैं। शरीर इस अस्तित्व का प्रक्षेपण है। हम उसे यथार्थ रूप में नहीं जानते हैं, न ही मानते हैं। थोड़ा-बहुत मानते भी हैं तो शाब्दिक रूप में मानते हैं। गहराई से, पूर्णता से अपने को नहीं पहचानते हैं।

अगर हम स्वानुभूत वस्तुओं, अपने शरीर या फिर अपने विचारों और अहसास तक को पूरी तरह से अपना नहीं कह सकते, तो फिर अपना किसे कह सकते हैं? यहाँ वेदांत का ज्ञान ही हमें बचाता है। आप आध्यात्मिक को अपना कहने के बजाय खुद को इनमें समाया हुआ मानकर चलेंगे, तो आप सिर्फ शरीर या सिर्फ विचार अथवा अहसास मात्र नहीं रह जाएँगे। आप ही सबकुछ होंगे, शरीर भी हम होंगे, हम ही सारे विचार भी होंगे और तमाम अहसास भी हम होंगे। आप हर प्रकार की संभावनाओं का व्यापक क्षेत्र बन जाएँगे।

हम अपने को वस्तुगत रूप में नहीं जानते हैं। जीवन में दिए गए पहचान, नाम या प्राप्त भूमिका को स्वयं मान रखा है। इसके लिए आप पाँच मिनट पढ़ना बंद कर एक प्रयोग करें। दो गहरी व लंबी श्वास लें। फिर स्वयं से पूछें कि मैं कौन हूँ। आप पाएँगे कि आप जयंती हैं, पुरुष हैं, भारतीय हैं, जैन हैं, जो कि

देश-काल में आपकी स्थिति को दरशाते हैं। यानी संदर्भ बिंदुओं की अपेक्षा से आप हैं। कभी आप कहेंगे कि मैं पुत्र हूँ, पति हूँ, दोस्त हूँ, पिता हूँ, चाचा हूँ, नागरिक हूँ, व्यापारी हूँ, डॉक्टर हूँ, कर्मचारी हूँ, इंजीनियर हूँ। अरे ये तो आपकी भूमिकाएँ हैं। आप यह नहीं हैं। इनका यथार्थ से कोई संबंध नहीं है। ये कार्य इस रूप में आपको करने हैं। कभी आप स्वयं के गुणों से जोड़कर बताएँगे कि मैं अच्छा/खराब, समझदार/बेवकूफ, ज्ञानी/अज्ञानी, मेहनती/कामचोर हूँ, जबकि ये आपके व्यक्तित्व के गुण हैं। आप यथार्थ में गुण नहीं हैं।

अर्थात् हम यथार्थ में क्या हैं, पता नहीं है। माता-पिता, स्कूल, शिक्षक, धार्मिक परंपराएँ, समाज व पुस्तकें जो बताती हैं, वह हम मान बैठे हैं। यद्यपि इसमें हमारा अपराध नहीं है, लेकिन इस मान्यता के कारण हमारे कृत्य ठीक नहीं होते हैं। क्योंकि हम व्यस्तता में डूबे हैं, स्वयं की खोज का समय नहीं है।

स्वयं की धारणाओं के बदले बिना हम अपना प्रबंधन ठीक तरह से नहीं कर पाते हैं। हम अस्तित्व के सार-तत्त्व द्वारा रचित शरीर व मन हैं। इनका प्रक्षेपण उस सार-तत्त्व ने किया है।

संसार भले ही वस्तुनिष्ठ लगता हो, लेकिन संसार व्यक्तिनिष्ठ है।

भौतिकवाद का अंधविश्वास मानव शरीर को देश-काल में जमी मूर्ति के रूप में देखता है, जबकि सच यह है कि मानव शरीर बुद्धि की लगातार बदलती और दोलन करती बनावट का रूप है। यह जो ऊर्जा और सूचना की नदी है, जो सतत प्रवाहमान, गतिशील और परिवर्तनीय है, जो स्वयं का निरंतर पुनर्सृजन करती है। यूनानी दार्शनिक हेराक्लिटस ने कहा है—"आप उसी नदी में दुबारा कभी नहीं उतर सकते, क्योंकि वहाँ नया पानी आता रहता है।" इसी तरह हम भी अपने एक ही शरीर में दुबारा प्रवेश नहीं करते, क्योंकि हमारे अस्तित्व के प्रत्येक क्षण में हमारा निजी शरीर हमारे विस्तारित शरीर ब्रह्मांड से ऊर्जा व सूचना आदान-प्रदान करता रहता है।

रेडियोधर्मी अध्ययन से पता चला है कि शरीर एक साल से भी कम समय में अट्ठानबे प्रतिशत अणु बदल देता है। हमारा शरीर हर पाँच दिनों में आमाशय का अस्तर बदलता है। हर महीने त्वचा बदल जाती है। हर छह सप्ताह में नया जिगर पनपता है और हर तीन माह में नया कंकाल बन जाता है। इतना ही नहीं, हमारे अरबों वर्षों के विकास की यादों का आधार माना जाने वाला डी.एन.ए. भी छह सप्ताह पहले वैसा नहीं था। यदि आप सोचते हैं कि आप भौतिक शरीर हैं, तो आप कौन से शरीर की बात करते हैं? जो आज आपका शरीर है, वह तीन महीने पहले तो नहीं था।

घटनाएँ देश-काल में घटती हैं। संसार क्रमगत कार्य-कारण से चलता है— अपना प्रबंधन हम स्वयं को यथार्थ रूप में रखकर सही कर सकते हैं। अपनी वर्तमान सोच व छवि को बदलना जरूरी है। सोच व छवि से तो तादात्मीकरण होने से भटकाव है, उनसे बचने हेतु आगे पढ़ें।

हम भूल जाते हैं—हम कौन हैं, क्योंकि हमको सामाजिक प्रभाव ने अपने बोध और भौतिकता के अंधविश्वास पर यकीन करना सिखा दिया है।

हम अपने को यथार्थ रूप से जानकर अपना प्रबंधन ठीक प्रकार से कर सकते हैं।

हमारी अपनी कमजोरियाँ: सुई अगर घर में खोई है तो घर में ही मिलेगी— राबिया नामक एक सूफी संत थी। वह अपनी बात बड़े अनोखे ढंग से सिखाया करती थी। एक दिन रात्रि में वह सड़क पर सूई खोज रही थी। उसे खोजते देख कुछ अन्य भक्त भी आकर खोजने लगे। जब सूई नहीं मिल रही थी तो लोगों ने पूछा कि आखिर कहाँ खोई थी। राबिया ने कहा, सूई घर में गुम हुई थी। तब खोजने वाले बोले कि गुम घर में हुई तो बाहर क्यों खोज रही हो? उसने कहा कि वहाँ प्रकाश नहीं था। यहाँ खोजना सरल है। इस पर राबिया से कहा, अरे महात्मन् ये क्या कर रही हैं? इस पर उसने कहा कि वह तो हम लोगों का ही अनुसरण कर रही है। आज भी सुख भीतर खो जाता है और बाहर खोजते हैं। वैसे ही वह कर रही है।

हम अपना रहस्य नहीं जानते हैं। स्वयं अकारण खुश नहीं हो सकते हैं। उपदेशक होना सरल है, इसे व्यवहार में लाने में बहुत रुकावटें हैं। मानकर भी न मानना व जानकर भी लागू न करना, यह मन की प्रवृत्ति है। हम सब इन उपायों को जानते व मानते हैं। लेकिन जीवन में नहीं उतारते हैं। 'लेकिन', 'परंतु' शब्द से स्वयं को उचित ठहराकर स्वयं को बचाते हैं।

अतः स्वयं उत्साहित रहें। अच्छी बातों को अपने जीवन में अपनाकर बदलाव महसूस करें।

मैं अपनी आदतों का भी शिकार हूँ। घर के कार्य में हाथ नहीं बँटाता हूँ। छोटे-छोटे कार्य करने में परेशानी होती है, जैसे कि गाड़ी में पेट्रोल भरवाना, टायरों में हवा चैक करना। मेरी कुछ लोगों के बारे में धारणा है कि क,ख,ग तो ठीक है एवं च,छ,ज खराब है। बस मैं वर्तमान में उनका मूल्यांकन नहीं करता हूँ। अतीत में ही जीता हूँ। अतः छोटे-छोटे कार्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए जीवन में अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार भूमिका निभाएँ।

हम व्यवहार में विरोधाभासी बातों को समझने का प्रयास नहीं करते हैं। हम पल में प्रसन्न, पल में दुःखी होते हैं। पत्नी कभी अच्छी लगती है, कभी उसमें कमियाँ-ही-कमियाँ नजर आती हैं। अतः हम अपनी हदों के साक्षी रहें। क्या हम विपरीत दिशाओं में भागते मन या बँटती ऊर्जा को देख सकते हैं? उसे देखने-समझने का प्रयास करें।

अपने भीतर जलती लौ है, जिसके कारण जीवन है, उसकी रक्षा करें। उस लौ को समझते हुए, अंदर स्थिर रहते हुए बाहर व्यवहार वैसा करें जैसा समय की माँग है, परिस्थितियों की माँग है। बाहर अभिनय की जरूरत पड़े वैसा करो, अंदर से हिलने की आवश्यकता नहीं है। सहज, सरल, सब की स्वीकृति स्वाभाविकता है। संसार के सारे नाटकों से अप्रभावित रहो। इसकी निस्सारता को पूरी तरह जान लो। यहाँ की जीत, नाम, दूसरों की स्वीकृति सब व्यर्थ हैं। हारकर कुछ खोने का तो सवाल ही नहीं है। यह सच है कि यहाँ पर जीतकर भी कुछ मिलता नहीं है। अतः द्रष्टा भाव बनाएँ रखें।

हममें से कइयों की अंतरात्मा का आरोप है कि जीवन व्यर्थ जा रहा है। हम बरबाद हो रहे हैं। यहाँ करने योग्य को हम नहीं कर रहे हैं। हम निरर्थक बोझ ढो रहे हैं। यहाँ सार्थक क्या है? साथ आने वाला क्या है?

मृत्यु पर सबकुछ तो यहीं छूट जाएगा। ऐसे में क्या करें?

अचेतन मन का उपयोग अपने पक्ष में करें

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार हमारा चेतन मन दस प्रतिशत ही है। शेष नब्बे प्रतिशत हमारा अवचेतन मन है। हमारे जीवन की नब्बे प्रतिशत चाबी अवचेतन के पास है। हमारी अधिकांश विद्या व तकनीकें चेतन मन तक ही सीमित हैं। हमारा अवचेतन चेतन मन के उपयोग की विधियों से नहीं चलता है। इस तरह हम नब्बे प्रतिशत अवचेतन के अधीन हैं। जब हम उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं तो वह हमारा उपयोग अपने तरीके से करता है।

कभी-कभी हम अचानक उदास हो जाते हैं। कभी बिना बात के, बिना कारण के बहक जाते हैं। कभी दुःखी हो जाते हैं, कभी खुश हो जाते हैं। यह सब हमारे दबाए हुए चेतन मन, जो कि अब अवचेतन हो चुका है, के कारण है।

अवचेतन के प्रयोग की विधि

हमारे मन में सोते वक्त जो अंतिम विचार होता है, वही प्रातः उठने पर पहला विचार होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि निद्रा के दौरान वही विचार मन में

घूमता रहा है अर्थात् अचेतन में वह घूमता रहा है। जब हम तकिए को प्रातः उठाने के लिए कहकर सोते हैं तो वह प्रातः उठाना ही है। वैसे ही हम अपने प्रश्नों को सोते समय पूछते-पूछते सोएँ तो प्रातः उसका सही जवाब मिलता है। इस प्रकार हम अचेतन का प्रयोग अपने पक्ष में कर सकते हैं। सोते वक्त स्वयं से अपनी समस्या का समाधान निष्ठा से पूछें; आपका अवचेतन रात भर मंथन कर आपको सही जवाब देगा।

भाग दो
देह-प्रबंधन

देह एक मंदिर है। भौतिक जगत् में हम शरीर द्वारा ही अभिव्यक्त होते हैं। शरीर के माध्यम से ही हम ब्रह्मांड से जुड़ते हैं। इसे हेय न समझे, न इसकी उपेक्षा करें, बल्कि इसका उपयोग करें। हमारी पृथ्वी की यात्रा इसी के द्वारा संभव है। इसका साथ छोड़ देने पर जीवन समाप्त हो जाता है। इसमें होने पर ही हम होते हैं। यह भोगभूमि है, कर्मभूमि है, यहाँ शरीर महत्त्व रखता है। इसके सुचारु रूप से काम न करने को हम बीमारी कहते हैं। जबकि बीमार कोई होना नहीं चाहता है। देह के बढ़ने-घटने पर ही हम कहते हैं कि मैं बढ़ा या घटा। तभी तो कहा गया है कि धर्म का साधन तन है। तनु खलस्य धर्मः साधनम्।

जगत् में हमारा अस्तित्व शरीर से है, उसके प्रति भी हमारे कुछ दायित्व हैं। उसे स्वस्थ रखना व बीमारी से बचाना हमारा पवित्र धर्म है। संतुलित आहार, योगासन, प्राणायाम आदि के द्वारा स्वस्थ रहें। चालीस की उम्र आते तक हम थक जाते हैं एवं किसी-न-किसी प्रकार के रोग की चपेट में आ जाते हैं। इससे कैसे बचें, ताकि बुढापा शीघ्र नहीं आए। इस हेतु आमंत्रित हैः

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री

ड्यूक जॉनसन—आदर्श स्वास्थ्य क्रांति

दीपक चोपड़ा—संपूर्ण स्वास्थ्य

लुइस हे—यू कैन हील योर लाइफ

जयंती जैन—तनाव छोड़ो सफलता पाओ।

4

संपूर्ण स्वास्थ्य

"अपने से बाहर कोई ईश्वर नहीं है। हमारी देह सबसे बड़ा मंदिर है। बाहर की सारी श्रेष्ठता का आधार भीतर व्याप्त आत्मा के गुण हैं। उसके इंद्रिय ग्राह्य न होने से सारी मुश्किल है।"

—स्वामी विवेकानंद

"शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।
धर्मार्थकाम मोक्षाणाः आरोग्यं मूलमुत्तमम्॥"

—कालिदास

मानव-देह का मिलना अत्यंत दुर्लभ है, जो कि अनेक जन्मों के संचित पुण्यों और शुभ कर्मों का फल है। इसी शरीर से मानव-जीवन के लक्ष्य चारों पुरुषार्थ —धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति संभव है, जिसके लिए इस शरीर का नीरोग रहना अत्यंत आवश्यक है। यही कारण है कि मानव जीवन के सात सुखों में निरोगी काया को सबसे बड़ा सुख माना गया है।

पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया।

तीजा सुख सुलक्षणा नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।

पंचम सुख स्वदेश में बासा, छठवाँ सुख राज में पासा।

सातवाँ सुख संतोषी जीवन, ऐसा हो तो धन्य है जीवन।

मानव जीवन का आधार शरीर है। अतः इसको स्वस्थ रखना हमारी पहली जिम्मेदारी है। शरीर के अभाव में हमारा जीवन संभव नहीं है। देह-प्रबंधन का प्रथम लक्ष्य सेहत ठीक रखना है। स्वस्थ देह में स्वस्थ जीवन रहता है। शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से तंदुरुस्त रहना, फिट रहना, स्वस्थ होना है। मात्र बीमार न होना, बल्कि समुचित रूप से मस्ती से रहना स्वस्थ होना है। जैसाकि तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में लिखा है—

बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर-दुर्लभ सद् ग्रंथन्हि गावा।।

पुनर्वितं पुनमित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही,

एतत्सर्व पुनर्लभ्यं, न शरीरं पुनः पुनः।

विश्व प्रसिद्ध डॉ. दीपक चोपड़ा ने इस विषय पर बहुत लिखा है। 'संपूर्ण स्वास्थ्य' उनकी एक प्रसिद्ध कृति है। भौतिक देह, सूक्ष्म देह, कारक देह के आपसी संबंधों को स्पष्ट करती है। हम मात्र दृष्ट स्थूल शरीर नहीं हैं। हमें लगता है कि हमारा शरीर ठोस है, जबकि वास्तव में यह अग्नि के अधिक निकट है, जो निरंतर परिवर्तनशील है। उदाहरण के लिए हर पाँच दिन में हमारे आमाशय की नई परत विकसित होती है। हमारी त्वचा हर पाँच सप्ताह में नई हो जाती है। हर साल हमारे शरीर के अट्ठानबे प्रतिशत अणु पूरी तरह बदल जाते हैं। आयुर्वेद हमें सिखाता है कि हम क्वांटम स्तर पर हस्तक्षेप करके स्वयं के स्वास्थ्य पर किस तरह पूर्ण नियंत्रण रख सकते हैं। डॉ. चोपड़ा ने क्वांटम भौतिकीय मानव देह का नया कंसेप्ट दिया है।

स्वस्थ रहने के नियम ही स्वास्थ्य के नियम हैं।

स्वस्थ भिखारी बीमार राजा से अच्छा होता है। इस अकेली कहावत से स्वास्थ्य का महत्त्व समझ में आता है।

स्वस्थ रहने के उपाय

1. संतुलित आहार

संतुलित आहार से ही पूर्ण स्वास्थ्य होता है। युक्तिसंगत आहार बिना संपूर्ण स्वास्थ्य संभव नहीं है। वस्तुतः आहार स्वयं में दवाई है। आहार-विहार के विज्ञान को जानकर हम अनेक व्याधियों का निदान कर सकते हैं। भारत के मनीषियों ने आहार का अत्यंत बारीकी से विश्लेषण किया है। दुनिया के तमाम आहार विशेषज्ञ स्थूल शरीर के पोषण और संरक्षण को ध्यान में रखकर आहार चयन का परामर्श देते हैं। लेकिन छांदोग्य उपनिषद् का ऋषि हमें सावधान करता है कि आहार शरीर के साथ-साथ हमारे मन को भी निर्धारित करता है। मन पर पड़े समस्त प्रभाव हमारी मानसिक-वैचारिक प्रकिया का हिस्सा बन जाते हैं और अंततः हम वही तो करते हैं। हम मानसिक स्तर पर तय कर लेते हैं। आश्चर्यजनक रूप से अन्न (आहार) हमारी संसार दृष्टि और कर्मचेष्टा का प्रभावशाली नियामक है। स्पष्ट ही है कि आहार हमारी इंद्रियों को पुष्ट करता है, हमारे प्राणों का बल बनता है और अंततोगत्वा मन की प्रवृत्तियों का भी पोषण करता है। हमारे मनीषी आहार मीमांसा में बताते व करते हैं कि जिन अच्छी बुरी प्रवृत्तियों से भोजन हेतु अन्न आदि को प्राप्त किया गया है और जिस हर्ष या विशाद के वातावरण में उसका भक्षण किया गया है, इत्यादि सूक्ष्म तथ्य भी व्यक्तित्व विकास में महती भूमिका निभाते हैं। यद्यपि आहार की इस प्रवृत्ति और

परिस्थितिपरक घटकों को भाषा में व्यक्त करना अभी तक संभव नहीं हो पाया है, परंतु यह सुनिश्चित है कि हमारे मन, हमारे विचारों पर हमारे द्वारा किए गए भोजन का निर्णायक प्रभाव पड़ता है।

आयुर्विज्ञान के मर्मज्ञ ऋषि चरक द्वारा परीक्षा काल में अपने शिष्यों से स्वास्थ्य-विषयक प्रश्न किए जाने पर वाग्भट्ट नामक शिष्य स्मरणीय उत्तर देता है —'हितभुक्', 'मितभुक्', 'ऋतभुक्' अर्थात् निज प्रकृति के अनुसार हितकारी, उचित मात्रा में एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करनेवाला स्वस्थ है। चरक सावधान करते हैं कि विद्वान् जितेंद्रिय मनुष्य सदैव हितकारी भोज्य पदार्थों का सीमित मात्रा में यथाकाल सेवन करें। इसके विरुद्ध व्यवहार करने से बहुत से कष्टकारी रोग हो जाते हैं।

सामान्यतः व्यक्ति भोजन की कमी से कम बीमार पड़ता है। हममें से अधिकांश व्यक्ति भोजन की अधिकता के शिकार हैं। तभी तो नोबल पुरस्कार विजेता लिनस पॉलिंग की पुस्तक 'हाउ टू लीव लोंगर एंड फील बेटर' में लिखा है कि आप जो भी खाना खाते हैं, वह पच्चीस प्रतिशत आपके पेट के लिए होता है, शेष पचहतर प्रतिशत डॉक्टरों के पेट के लिए होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि भोजन की मात्रा कम करें।

मैं अपना अनुभव बताना चाहता हूँ। मैं कम खाना खाता हूँ। जब भी मैं भोजन अधिक कर लेता हूँ तो मैं काम नहीं कर पाता हूँ। मेरा पेट चढ़ जाता है व मैं आराम करने को विवश हो जाता हूँ। मैं चिड़चिड़ा हो जाता हूँ। आहार का विवेक नहीं है तो स्वास्थ्य भी नहीं है। जैसाकि एक कहावत है कि सम्राट् की तरह नाश्ता करो, राजकुमार की तरह दिन का खाना खाओ व भिखारी की तरह शाम का खाना खाओ। इससे प्रकट है कि नाश्ते का बहुत महत्त्व है, जो कि प्रायः हम टाल जाते हैं। पौष्टिक नाश्ता करना जरूरी है।

नाश्ते में दूध, फल व अंकुरित अनाज हो सकते हैं।

भूख लगने पर ही खाना खाएँ।

रेशेदार भोजन लें। फलों का रस नहीं, फल खाएँ। सॉफ्ट ड्रिंक, कोक-पेप्सी के बजाय छाछ, गन्ने का रस, नींबू पानी आदि लें।

स्वामी रामदेव के अनुसार अपने भोजन में लौकी का प्रयोग अधिक करें। इसका सूप पीएँ।

मैं एक डाइटीशियन या डॉक्टर नहीं हूँ। लेकिन अपने अनुभव के आधार पर कुछ बातें बताना चाहता हूँ।

स्वास्थ्य पर कोई प्रामाणिक पुस्तक मुझे नहीं मिली। इससे स्वास्थ्य एवं भोजन पर पुस्तकों की कमी है।

क्या सुबह का नाश्ता छोड़ देना सही है?

कई लोग सुबह का नाश्ता छोड़ देते हैं। यह आपकी चयापचय क्रिया को धीमा करता है और आपको बाद में अधिक खाने के लिए प्रेरित करता है। जब आप सुबह का नाश्ता छोड़ देते हैं तो आपको कुछ समय के लिए बहुत सी ऊर्जा मिलती है। लेकिन जब आप अंत में खाना खाते हैं तो आपको अनुपयुक्त भोजन की लालसा होगी। सुबह का संतुलित नाश्ता करने पर आपकी मेटाबोलिक प्रक्रिया सुचारु बनी रहती है और वह अतिरिक्त वसा को समाप्त कर देती है। यह प्रक्रिया एक अच्छा शरीर बनाने में सहायक साबित होती है और इससे आपके दिमाग के रसायन भी संतुलित रहते हैं।

रेशे न पचने वाले, कॉन्पलेक्स कार्बोहाइड्रेड होते हैं। इनमें कई पोषक तत्त्व होते हैं, जो सिस्टम की सफाई में काम आते हैं। भोजन में इनकी कमी से पेट में दर्द, अपेंडिसाइटिस या फिर अल्सर की समस्या हो सकती है।

यदि हमारे भोजन का आधा हिस्सा पौधों से उत्पन्न चीजों का हो और वे प्राकृतिक रूप में हों तो यह हमारे स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है।

आपको ज्यादातर शक्कर के बिना ही रहना चाहिए। खाने में शक्कर व नमक ज्यादा न हो। पेय पदार्थों में छाछ, नींबू पानी और हर्बल चाय आदि लेना उत्तम है।

आयुवर्धक , आरोग्यवर्धक दैविक भोजन अलसी

हमारे ऋषि मुनि योग, तप, दैविक आहार व औषधियों के सेवन से सैकड़ों वर्ष जीवित रहते थे। ऐसा ही एक दैविक आयुवर्धक भोजन है, 'अलसी'। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इसे 'वेज ओमेगा' भी कहता है। इसीलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन अलसी को 'सुपर स्टार' फूड का दरजा देता है। महात्मा गांधी ने लिखा है, 'जहाँ अलसी का सेवन किया जाएगा, वह समाज स्वस्थ व समृद्ध होगा।'

अलसी में मुख्य पौष्टिक तत्त्व लगभग 18 प्रतिशत ओमेगा-3 फैटी एसिड (एल्फा-लिनोलेनिक एसिड) लिगनेन, प्रोटीन व फाइबर होते हैं। जलसी में ईसबगोल से अधिक फाइबर होते हैं। अलसी ओमेगा-3 फैटी एसिड का पृथ्वी पर सबसे बड़ा स्रोत है। लिगनेन हमें प्रोस्टेट, स्तन, बच्चेदानी, आँत व त्वचा के कैंसर से बचाता है। 'एड्स रिसर्च असिस्टेंट इंस्टीट्यूट' के डायरेक्टर डेन्यिल

देव्ज कहते हैं कि जल्दी ही लिगनेन से एड्स ठीक होने वाला है। अलसी ही लिगनेन का सबसे बड़ा स्रोत है। अलसी गर्भावस्था से वृद्धावस्था तथा फायदेमंद है। स्नायुतंत्र, परिसंचरण तंत्र, पाचनतंत्र एवं प्रजनन तंत्र अलसी के सेवन से मजबूत होते हैं। अलसी हमारी प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाती है।

हमारे स्वास्थ्य पर अलसी के चमत्कारी प्रभावों को भली-भाँति समझने के लिए ओमेगा-3 व ओमेगा-6 फैटी एसिड को समझना होगा। दोनों ही फैटी एसिड हमारे शरीर के लिए आवश्यक है। यह हमारे शरीर में नहीं बन सकते हैं। इसलिए इन्हें भोजन द्वारा ही ग्रहण करना होता है।

ओमेगा-3 हमारे शरीर के विभिन्न अंगों, विशेष तौर पर मस्तिष्क, हृदय, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र व आँखों के विकास में सहयोगी है। ओमेगा-3 हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। यह यकृत, गुरदे, एड्रिनल, थायरॉइड आदि ग्रंथियों को संतुलित करने में सहायक होते हैं। हमारी कोशिकाओं की भित्तियाँ ओमेगा-3 से बनती हैं। इसकी कमी होने पर यह भित्तियाँ ओमेगा-6 से बनने लगती हैं। अतएव, इस कारण वे कठोर व जड़ हो जाती हैं। तब हमें उच्च रक्तचाप, मधुमेह, आर्थराइटिस, मोटापा, कैंसर आदि बीमारियाँ होने लगती हैं। ओमेगा-6 आयु घटाते हैं, ओमेगा-3 आयु बढ़ाते हैं। ओमेगा-6 शरीर में रोग पैदा करते हैं तो ओमेगा-3 हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं। अन दोनों फैटी एसिड में संतुलन आवश्यक है। फास्ट-फूड, रिफाइंड तेल व टांसफेट ओमेगा-6 बढ़ाते हैं। ओमेगा-3 की यह कमी 30-60 ग्राम अलसी प्रतिदिन खाकर आसानी से पूरी कर सकते हैं।

नोबेल पुरस्कार हेतु चयनित जर्मन डॉ. योहाना बुडविझ ने अलसी आधारित कैंसर रोधी प्रोटोकॉल खोजा है। यह एक आहार चिकित्सा है, जिसमें पनीर के साथ ठंडी विधि से बना अलसी का तेल अखरोट व बादाम आदि लेने से 90 प्रतिशत कैंसर ठीक होता है। इसमें डॉ. बुडिविझ इलेक्ट्रोन युक्त ऑर्गनिक आहार का सुझाव देते हैं। डॉ. ऑटो वारबर्ग को 1931 में इस खोज पर कि कोशिकीय ऑक्सीजन की कमी से कैंसर होता है व ऑक्सीजन की मात्रा कोशिकाओं में बढ़ने से कैंसर ठीक होता है, नोबेल पुरस्कार मिला था, लेकिन वो कोशिकाओं में ऑक्सीजन अधिक पहुँचाने की विधि नहीं खोज पाए हैं। डॉ. बुडविझ ने उक्त काम अलसी व पनीर पर अनुसंधान कर किया।

अलसी सेवन के तरीके

- हमें प्रतिदिन 30-60 ग्राम अलसी का सेवन करना चाहिए।

- रोज 30-60 ग्राम अलसी को मिक्सी के ड्राई ग्राइंडर में पीसकर आटे में मिलाकर रोटी, पराँठा आदि बनाकर खाना चाहिए।
- प्रातःकाल अंकुरित अलसी का नाश्ता भी किया जा सकता है।
- सुबह-शाम दो-दो चम्मच अलसी का पाउडर पानी के साथ, सब्जी जूस, दाल या सलाद में मिलाकर भी ले सकते हैं।
- साफ बीनी हुई अलसी को धीमी आँच पर तिल की तरह भून लें, फिर मुखवास की तरह इसका सेवन करें।

2. शुद्ध हवा

प्रदूषित हवा के सेवन से हमारी प्रतिरोध क्षमता घटती है व शरीर थकता है। सचेत श्वसन तन और मन के तालमेल पर ही संभव होता है। साँस तन और मन के बीच समन्वय स्थापित करती है। साँसों में हलचल विचार को और विचार में हलचल साँसों को प्रभावित करती है। जब आप किसी मुद्दे को लेकर अशांत या उत्तेजित होते हैं तो आपकी साँस उखड़ने लगती है। जब आप शांत होते हैं, आपकी साँस भी एक लय में चलती है। मेडिटेशन जैसी तकनीक अपनाकर आप अपनी साँसों को एक लय में बनाए रख सकते हैं। ठीक इसी तरह आप अपने मन को शांत रखने के लिए श्वास को देख सकते हैं।

3. साफ पानी

सत्तर प्रतिशत हमारा शरीर जल से बना है। अतः दिन में पंद्रह से बीस गिलास पानी पीएँ। भोजन के एक घंटे बाद जल पीना अच्छा रहता है। प्रत्येक चौबीस घंटे में आपका शरीर अपनी दैनिक क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए चालीस हजार गिलास के बराबर पानी पुनर्चक्रित (रिसाइकिल्ड) करता है। जब तक जिंदगी चलती है, यह प्रक्रिया हमारे शरीर में हर रोज होती रहती है। अपनी मेटाबोलिक क्रियाओं, पुनर्चक्रण और वातावरण की परिस्थिति के कारण शरीर से हर रोज छह-सात गिलास पानी कम हो जाता है। इस कमी की पूर्ति हमें इतना ही पानी पीकर करनी होती है।

कसरत करने से पहले पानी पीना चाहिए, ताकि पसीना बनने के लिए शरीर में जल उपलब्ध रहे।

4. व्यायाम/नियमित श्रम

व्यायाम शरीर के लिए जरूरी है। इससे शरीर में रक्त का प्रवाह बढ़ता है और विषैले पदार्थों के शरीर से बाहर निकलने में आसानी हो जाती है। विषैले

पदार्थों के लिए उपयुक्त घर का काम करने वाला अतिरिक्त वसा भी व्यायाम से खत्म हो जाती है। थोड़ा सा व्यायाम भी आम इनसान को काफी लाभ पहुँचा सकता है। कोई भी व्यायाम—साइकिल चलाना, टहलना, तैरना और चढ़ना-उतरना आदि, जिससे आपकी हृदय-गति बीस मिनट के लिए बढ़ जाती है, दिन में कम-से-कम तीन बार करें। ऊर्जा संचित करने में व्यायाम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। न केवल इसलिए कि यह हमारे शरीर को ऑक्सीजनेट करता है और बिना ऑक्सीजन के ऊर्जा पैदा नहीं हो सकती, बल्कि इसलिए भी कि शरीर में किसी भी तरह की हलचल खुद एनर्जी पैदा करती है। व्यायाम के कारण हमारे शरीर में इंडोर्फिन उत्सर्जित होता है, जो दिमाग को राहत देता है। हमारे शरीर में होने वाले हार्मोंस के सिक्रेशन पर प्रभाव पड़ता है। खुशनुमा माहौल में पाचक रसों का स्रावण होता है। नकारात्मक परिस्थिति में जहरीले रसायन बनते हैं, जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं।

हमारे जीवन में शारीरिक श्रम का बहुत महत्त्व है।

5. स्वस्थ विचार

मस्तिष्क और शरीर एक-दूसरे के साथ संवाद या संप्रेषण करते हैं। हम किस प्रकार सोचते हैं, महसूस करते हैं, स्मरण करते हैं और कल्पना करते हैं—ये सारी बातें हमारी देह को प्रभावित करती हैं। हमारे हर काम और विचार का हमारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम जान लें कि हम किस प्रकार खाते हैं, श्वास लेते हैं, पचाते हैं, चयापचय करते हैं और उत्सर्जन करते हैं तो हमारा मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य बेहतर हो सकता है।

हमारे विचार ही हमारे सृजक हैं। हम अपने मन में उठते-चलते विचारों के अनुरूप ही महसूस करते हैं। इन विचारों के अनुसार ही शरीर में हार्मोंस का स्राव होता है। उससे ही हमारा शरीर बनता है।

6. दिनचर्या

हमें अपने दैनिक कार्यों का संयोजन योजना बनाकर तदनुरुप करना चाहिए। महत्त्व के आधार पर प्राथमिकताएँ तय कर कार्य करें।

7. ऋतुचर्या

मौसम के अनुसार खान-पान को ऋतुचर्या कहते हैं। गरम वस्तुएँ सर्दी में लें; ठंडी वस्तुओं का सेवन गरमी में करें। आयुर्वेद में ऋतुचर्या पर विशद वर्णन उपलब्ध है। उसका अध्ययन व अनुसरण स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक लाभप्रद है।

5

थकान मिटाएँ: विश्राम से ऊर्जा प्राप्त करें

> *"जो विश्राम प्राप्त कर सकता है, वह बड़े-बड़े नगरों के विजेता से अधिक महान् है।"*
>
> *—फ्रैंकलिन*

सफल होने के लिए मानसिक थकान/तनाव कैसे मिटाएँ

हमारी सबसे बड़ी समस्या मानसिक थकान है। हम सभी थके हुए हैं। जीवन में कहीं भी विश्राम नहीं मिलता है। दिमाग हमेशा दौड़ता रहता है। हम निरंतर विचारों में खोए रहते हैं। जल्दबाजी एवं विचार करने से हम थक जाते हैं। मानसिक थकान से हम ज्यादा परेशान हैं। थकान अमूमन विचार करने से उत्पन्न होती है। विचार करनेवाला बैठे-बैठे तनाव बढ़ाता है। हमारी परेशानी मानसिक थकान से है। अमूमन लेटकर आराम करने से मानसिक थकान नहीं मिटती। उलटे हम विचारों में खो जाते हैं और थकान बढ़ जाती है। हम मनोरंजन करते हुए भी थक जाते हैं। क्योंकि मनोरंजन में विचार बने रहते हैं। असली समस्या मानसिक थकान की है। थका हुआ व्यक्ति सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है।

जब बच्चे एक तरह के खिलौने से खेलते हुए थक जाते हैं तो नए खिलौने चाहते हैं। एक खेल से थककर दूसरा खेल खोजते हैं। अपने प्रयत्न बदलते रहते हैं। बड़े भी जीवन भर यही करते हैं। एक उपलब्धि से दूसरी उपलब्धि हेतु भागते रहते हैं। इससे थकान नहीं मिटती है।

इसके विपरीत शारीरिक थकान हमें प्रसन्नता देती है। तभी तो खिलाड़ी खेल के मैदान में थकते नहीं हैं; खेलकर प्रसन्न होते हैं। तभी तो शारीरिक श्रम का बड़ा महत्त्व है। गांधीजी ने एक बार कहा था कि अपने श्रम की रोटी ही मीठी लगती है। अर्थात् मानसिक थकान से बचने हेतु हमें शारीरिक श्रम करना होगा। प्रातःकालीन भ्रमण, व्यायाम, योग, प्राणायाम आदि इसमें सहायक हैं। जब भी आपको थकान लगे तो शारीरिक श्रम करें। इससे आपकी मानसिक थकान मिट जाएगी। अर्थात् तनाव का सामना करने में श्रम का बड़ा महत्त्व है।

प्रकृति के साथ चलने में ही विश्राम है। नदी की धारा के विपरीत दिशा में तैरने में थकान है। इसलिए नदी की धारा के साथ बहें। विरोध करना यानी पहले स्वयं से मन में लड़ना है। अपना प्रतिरोध ही व्यक्ति को थकाता है। अतः इस

प्रतिरोध से बचें और इसे स्वीकार करें। अपने विचारों से संघर्ष किए बिना आप दूसरों से लड़ नहीं सकते। फूल खिलने के लिए अपनी तरफ से प्रयत्न नहीं करते। अस्तित्वगत सत्ताएँ उन्हें सहज खिला देती हैं। वे अपनी तरफ से उसमें अवरोध खड़े नहीं करते। हम मनुष्यों ने तो अहंकार करने के, जानने के, बनने के इच्छा-भाव के कारण स्वयं के होने में बाधाएँ खड़ी की हैं। विश्रामासन बस इन्हें हटाने का नाम है। यह सबकुछ छोड़ने का कार्य है। आप स्वयं को तब कहीं पहुँचने की, कुछ करने की दरकार नहीं रहेगी। रुको! सभी प्रयत्न छोड़ो। स्वयं को शिथिल करो। क्या आपने कभी गरुड़ को पंख फैलाए हवा के साथ आसमान में बिना प्रयत्न के उड़ते हुए देखा है? जब वह शांत हवा के साथ बहता है, अपने डैने भी नहीं हिलाता है। शांत हवा की गति के साथ बहता है, स्वयं के सारे प्रयत्न बंद कर देता है, वही विश्राम है—वही जीवन का आनंद है। मुरदा तैरने का प्रयत्न नहीं करता है; पानी उसे तैराता है। अस्तित्व की यही विशेषता है। युद्ध के मैदान में नेपोलियन घोड़े पर विश्राम कर लेता था। बहुत से मित्र संगीत सुनकर भी रिलैक्स हो जाते हैं।

रिलैक्स होने के पाँच व्यावहारिक उपाय

रिलैक्स होने के अनेक उपाय हैं। शांत होने के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विधि होती है। आप भी रिलैक्स होने की किसी-न-किसी विधि से परिचित हैं। फिर भी यहाँ पर रिलैक्स होने की पाँच विधियाँ बताई जा रही हैं, जिनसे आप अपनी थकान को मिटा सकें—

1. नींद लेकर स्वयं को तरोताजा करें

हम रोज नींद लेते हैं। फिर भी इसको गहरी करने की आवश्यकता है। नींद एक प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति तरोताजा होता है। गहरी नींद स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। मनोरोगों की चिकित्सा एलोपैथी में तो मुख्यतः रोगी को नींद की गोलियाँ देकर ही की जाती है। नींद हमारी खोई ऊर्जा को पुनः प्राप्त करने का उपाय है।

दिन भर कार्य में खत्म हो गए मस्तिष्क-रसायनों की आपूर्ति नींद के समय होती है। अगर हम पर्याप्त नींद नहीं लें तो मरम्मत एवं पुनः आपूर्ति का कार्य धीमा हो जाता है।

अच्छी नींद हेतु सबसे पहले बिस्तर पर जाते ही स्वयं को शिथिल करें। सभी प्रकार की उलझनें, द्वंद्व, समस्याओं को छोड़ें। अपने पास लौटें। अपने शरीर में होने वाली अकड़न, कड़कपन, खिंचाव को देखें व उसे संतुलित करें। अपने को

ढीला छोड़ दें। श्वास की गति को धीमा करें। शवासन करना श्रेष्ठ है। स्वयं को शिथिल होने के निर्देश दें।

'ॐ' के धीमे-धीमे उच्चारण से अपना मन केंद्रित करें। श्वास मंद गति से लें व भाव करें कि शरीर धीरे-धीरे शिथिल हो रहा है। शरीर के सभी जोड़ों को शिथिल करें। सोचें कि आप स्वयं परमात्मा की कृपा के अधीन हैं। दैवीय शक्तियों की अनुकंपा आप पर बरस रही है। जैसे माँ की गोद में बच्चा चिपककर सोता है, वैसा ही भाव करें कि प्रकृति मैया की गोद में आप सो रहे हैं। बीच में विचार पकड़ने की कोशिश करें तो 'ॐ' का गुंजन करें।

गहरी नींद हेतु अपने श्वसन को शिथिल करें। श्वासों के आने-जाने पर ध्यान करने से कई बार नींद उड़ जाती है। अतः नाक के नथूनों की बजाय नाभि पर ध्यान दें। मस्तिष्क तनाव का केंद्र है, ध्यान वहाँ से हटाकर नाभि पर ले जाएँ। नाभि शांति एवं संकल्प का केंद्र है।

सभी समस्याओं से स्वयं को मुक्त कर लें। अभी इस बिस्तर पर लेटे-लेटे तो कोई भी समस्या नहीं सुलझेगी, सुबह उठकर उनका सामना करेंगे—ऐसा सोचें। हिमालय को अपने कंधों पर मत उठाओ, न ही हिमालय गिरने वाला। अभी तो मात्र सोना है, इसमें कोई समस्या नहीं है। गहरी नींद लेकर स्वयं को ऊर्जावान बनाएँ, ताकि कल समस्याओं का बेहतर ढंग से सामना कर सकें।

नींद की पूर्व शर्त है—समर्पण। किसी भी तरह के प्रयास से मुक्त रहें। अपने आपको सौंप दें। व्यक्ति को पुनः ऊर्जावान होने के लिए नींद से बड़ी कोई दवा आज तक नहीं खोजी जा सकी है। नींद से बड़ी कोई औषधि नहीं है। इस औषधि का पूरा लाभ उठाएँ।

विंस्टन चर्चिल रोज दिन में सोता था। दिन में आधे घंटे की नींद लेना अच्छा माना जाता है। जब ज्यादा थकान हो तो पाँच-दस मिनट की झपकी (पावर नेप) लेना भी श्रेष्ठ है।

2. अनासक्त होकर कर्म करें

शांत चित्त होकर कार्य करें, बिना फल की इच्छा से कार्य अच्छा होता है। तभी तो गीता में 'योगः कर्मसु कौशुल' लिखा हुआ है।

जल्दबाजी एवं उत्तेजना में कार्य ढंग से नहीं किया जा सकता है। उतावली, अनुपस्थित-मस्तिष्क, बातें करते हुए, चिढ़ते हुए, उदासी में, अति गंभीरता से कार्य करने पर कई बार कार्य बिगड़ जाता है।

कार्य ही पूजा है, नमाज है, आराधना है। कार्य को पूरे मन के साथ, मस्ती के साथ, प्रेमपूर्वक करें। किसी कार्य को छोटा-बड़ा न मानें व कार्य को पूरा महत्त्व दें। परिश्रम कभी बेकार नहीं जाता है। हमारी संस्कृति की सबसे बड़ी विकृति कामचोरी है। हमारे यहाँ कार्य से बचने को दक्षता मानते हैं। अधिकांश व्यक्ति कार्य से जी चुराते हैं। इस वृत्ति से निजात पाएँ व कार्य मस्ती से करें।

कार्य की अधिकता से आज तक कोई नहीं मरा है। लेकिन कार्य न करने से अनेक लोग अपना संतुलन खो चुके हैं। कार्य को होशपूर्वक करने से थकान नहीं आती है। व्यक्ति की कार्यक्षमता भी बढ़ जाती है। ओशो के पूना आश्रम में कार्य-ध्यान को बहुत महत्त्व दिया जाता है। कार्य को ध्यानपूर्वक करने से व्यक्ति को मानसिक शांति मिलती है एवं कार्य को प्रेम से करने के कारण हमें भावनामक खुशी व संतोष मिलता है। एक बार लक्ष्य तय करने के बाद पूरी निष्ठा से कार्य करें। लक्ष्य को बार-बार याद कर ऊर्जा न खपाएँ—कृष्ण इसे ही निष्काम-कर्म कहते हैं।

हम भीतर से खालीपन महसूस करते हैं। यह हमारी मानसिक रिक्तता होती है। यह रिक्तता वैचारिक है। हम अपने को परिधि के ऊपर महसूस नहीं करते हैं। यह हमारी देह से नहीं उपजती है। लेकिन हम अपने को बाह्य संपदा-धन, पद, जमीन, वस्तुओं से भरना चाहते हैं। आंतरिक कारणों का निवारण बाह्य साधनों से नहीं हो सकता है। बाह्य संपदा का आकार होता है, अतः मन उसकी अन्य से तुलना करता जाता है कि उसके पास तो इतनी संपदा है, मेरे पास तो इतनी सी है। इस कारण से वह और संपदा पाने की होड़ में लगा रहता है एवं उसका खालीपन कभी भरता ही नहीं है।

यह खालीपन तो जानने से, स्वीकारने से, पहचानने से भरता है। बनना छोड़ दो। भीतर का शून्य बाहरी चीजों से नहीं भरा जा सकता।

बाहरी चीजें अस्तित्व में प्रवेश नहीं कर सकतीं। भीतरी खालीपन तभी भर सकता है जब हम स्वयं को उपलब्ध होते हैं। हम निष्काम भाव से अपने कार्य को निरंतर करते हुए शांत हो सकते हैं।

3. योग-निद्रा लें

जब कभी रिलैक्स होना हो तो योग-निद्रा लें। शवासन में लेटकर विश्राम करना योग-निद्रा है। स्वयं पीठ के बल पर लेट जाएँ, हथेलियाँ खुली व आसमान की तरफ हों। श्वास धीमी करें। शरीर को धीरे-धीरे क्रमशः अंगों पर ध्यान ले जाते हुए शिथिल करें। इस तरह हम मानसिक थकान को कम कर सकते हैं। बाजार

में योग-निद्रा के निर्देशों की कैसेट्स व सी.डी. मिलती है। स्वामी रामदेव व स्वामी निरंजन देव सरस्वती की सी.डी. व कैसेट्स अच्छे हैं।

4. गुंजन करें

जब भी विचार सताने लगे तो भँवरे की तरह गुंजार करें। इस तरह गुंजार करने से मन शांत हो जाता है। हमारी मुख्य समस्या मानसिक थकान की ही है। गुंजार में विचारों की बाढ़ बह जाती है, तब मन हलका हो जाता है। इस तरह हम तरोताजा हो जाते हैं। कम-से-कम दस मिनट एवं अधिकतम आधे घंटे तक गुंजार करें। गुंजार की बजाय 'ॐ' की ध्वनि का उच्चार भी कर सकते हैं। इससे तनाव विसर्जित हो जाएगा। यह भ्रामरी प्राणायाम का ही सरल रूप है। गुंजार करने से हमारे मन के उपद्रव शांत होते हैं, स्मृति बढ़ती है। इससे जीवन में सहजता, व्यवस्था व शांति आती है।

5. माइंड मशीन द्वारा रिलैक्सेशन

यदि आप अपने प्रयत्नों द्वारा रिलेक्स नहीं हो पाते हैं तो निराश होने की जरूरत नहीं है। विज्ञान ने आपके लिए भी रिलैक्स होने की मशीन इजाद कर दी है। विदेशों में इस तरह की अनेक माइंड मशीनें मिलती हैं। हमारे यहाँ भी मस्तिष्क को शांत करने हेतु बाजार में माइंड-मशीन मिलती हैं। यह अत्याधुनिक मशीन है, जिसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं लेखक राज बापना ने डिजाइन की है। इसका प्रयोग मैंने किया है। कार्यालय से थककर घर पहुँचने पर मैंने प्रतिदिन माइंड-मशीन का प्रयोग किया है और इसे लाभप्रद पाया है।

इन सी.डी. में ऐसी ध्वनियाँ, संगीत व संदेश बजते हैं, जिनसे हमारा मस्तिष्क शांत हो जाता है। इस माइंड-मशीन में एक इलेक्ट्रॉनिक बॉक्स, ब्रेन ग्लासिस, जिसमें फ्लेशिंग लाइट्स होती हैं, विशेष सी.डी. और हेडफोन होते हैं। इनमें सकारात्मक गुप्त संदेश होते हैं। माइंड-मशीन के प्रयोग से हमारी मस्तिष्क की तरंगें बदलती हैं। इन कैसेट्स को इयरफोन लगाकर आराम से लेटकर सुनने की जरूरत है। इनको सुनने पर आपका मस्तिष्क अल्फावेव निकालने लगता है। इससे पूर्ण शांति का आभास होता है व थकान उतर जाती है।

सावधान!

सिगरेट, तंबाकू व गुटखा सेवन करने से हम रिलैक्स नहीं होते हैं। मद्यपान से भी तत्क्षण लगता है कि ताजा कर रहा है। लेकिन अंततोगत्वा निराशा ही पैदा करता है।

जीवन में विश्राम प्राप्त करने की कला बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम सभी तनाव के कारण बिखरे हुए हैं। इन विधियों का प्रयोग करें, विश्राम पाएँ। योग, प्राणायाम, ध्यान के बाद भी शवासन करें।

6

जीवन में रीचार्ज होने के लिए जरूरी है स्वस्थ मनोरंजन

"रंगशाला एक तरह के अस्पताल हैं। कुछ दृश्यों को देखने से दर्शकों के मन का बोझ हलका हो जाता है। इस तरह अंतर्मन का उपचार हो जाता है।"

–अरस्तू

"हर व्यक्ति को प्रतिदिन कम-से-कम एक छोटा सा गीत अवश्य सुनना चाहिए। एक उत्तम कविता अवश्य पढ़नी चाहिए, एक सुंदर चित्र अवश्य देखना चाहिए और कुछ मीठे बोल भी अवश्य बोलने चाहिए–और जब यह सब जब उसे आनंदित करने वाले प्रतीत होने लगे, तो उसे चाहिए कि इन सबके द्वारा दूसरों को भी आनंदित करने का प्रयत्न करे।"

–गेटे

स्वस्थ रहने हेतु मनोरंजन अति आवश्यक है। मनुष्य को मनोरंजन की जरूरत है,

जानवरों को नहीं। अनचाहे काम में डूबा व्यक्ति ऊब का शिकार होता है। इस ऊब को मिटाने के लिए मनोरंजन खोजता है। मनोरंजन दिमाग की ऑक्सीजन है। व्यस्तता भरे जीवन में स्वयं को खुश करने के साधनों को मनोरंजन कहते हैं। किसी व्यक्ति या समाज को आनंदित या प्रफुल्लित करने और तनाव से मुक्ति दिलाने वाला कोई भी कार्यक्रम, कला-प्रदर्शन या गतिविधि मनोरंजन कहलाती है। समाज का शायद ही कोई तबका ऐसा हो, जिसके पास मनोरंजन के साधन, अपने तरीके नहीं हों। लोक-नृत्य, लोकगीत, नाटक, तमाशा, कठपुतली, नौटंकी, सरकस, कबूतरबाजी, तीतरबाजी आदि विधाएँ इसके पारंपरिक साधन रहे हैं। सिनेमा, टेलीविजन और कंप्यूटर गेम्स इसके आधुनिक साधन हैं। किसी को सिनेमा/टी.वी. देखने में आनंद आता है तो कभी अच्छी पुस्तक पढ़ने से भी मन बहलता है। टेलीविजन के प्रचार-प्रसार ने तो मनोरंजन की तमाम विधाओं को दृश्य-श्रव्य रूप में घर-घर पहुँचा दिया है।

रंगशाला के सारे आयोजन भी हमारे मनोरंजन हेतु ही बने हैं। सैर-सपाटा व पिकनिक पर जाना भी जीवन में रस घोलता है।

आनंद-प्राप्ति के लिए बनी है सृष्टि

हम खराब मूड को ठीक करने के लिए मनोरंजन के साधन ढूँढ़ते रहते हैं। मनोरंजन के हजारों तरीके हमने बना लिए हैं, लेकिन यह भी सच है कि पिछले पचास वर्षों में जहाँ अवसाद दस गुना बढ़ा है, वहीं जीवन में संतुष्टि, खुशी की दर घटी है। मनोरंजन के अनेक साधन हैं, लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि हम उनसे आनंद प्राप्त करें।

आनंद का अर्थ उच्छृंखल क्रीड़ा या अय्याशी नहीं। विलासिता और अय्याशी तो जीवन को पतन के गर्त की ओर ले जाते हैं। आनंद का वास्तविक अर्थ है—व्यक्ति की सभी शक्तियों का पूर्ण विकास तथा विकसित क्षमताओं का विश्व कल्याण के लिए प्रयोग और नैतिक जीवन में एक प्रकार के संतुलन की सृष्टि करना। आनंद का अर्थ सुख, समृद्धि, शांति और सद्भाव का आगमन तथा दुःख, ईर्ष्या एवं द्वेष आदि बुराइयों का नाश है। आनंद जीवन का एक स्वर्गिक पहलू है।

जिंदगी एक लेन-देन की शृंखला है। हम सब के अंदर एक बच्चा होता है, जो संतुष्ट होना व बिगड़ना चाहता है। हमें खुश रहने के प्रयत्न प्रतिदिन करने होंगे। हम धैर्य एवं चतुराई के साथ कई छोटे-छोटे समझौते करके जिंदगी को आसान एवं खुशहाल बना सकते हैं।

शॉर्टकट का पाप जीवन में हम रोज करते हैं। दूसरी भाषा में कहें तो यह कामचोरी व पलायनवाद है। हमें इसमें मजा आता है। इससे हमारी उन्नति रुक जाती है।

जीवन में मनोरंजन की भूमिका—अवचेतन की धुलाई

मन को स्वस्थ करने हेतु मन का रंजन करना अत्यावश्यक है। खुशी का सृजन मन में ही होता है। अतः खुश रहने में मनोरंजन सहायक है। हम स्वयं जिस तरह का जीवन जी रहे हैं, अब उसमें सुगंध, मिठास एवं मस्ती नहीं है, त्वरा नहीं है, उत्साह नहीं है, जीने की ललक नहीं है। ऐसे में हम जिस तरह से जी रहे हैं, उस पर विचारने की जरूरत है। उसे बदलने की दरकार है। इसे बदले बिना जीवन में रस, ऊर्जा, रंग नहीं आ सकते हैं।

अच्छे मनोरंजन का उद्देश्य हमारी विचार-शक्ति को धार देना तथा भावनाओं को विकसित करना है। इससे भावनाओं का विरेचन भी होता है। हम जब देवदास की त्रासदी पर रोते हैं तो हमारा दुःख भी बहता है। भावनाओं का उदात्तीकरण देखकर भी उच्च भावनाएँ मजबूत होती हैं। बुरी भावनाओं का बुरा परिणाम

देखकर हमारी बुरी भावनाएँ कमजोर होती हैं। हमारी भावनाओं का रेचन हो जाता है। हमारा अवचेतन का बोझ हलका हो जाता है।

मनोरंजन समय काटने का उपक्रम नहीं है। यह हमें अपने से परिचय कराता है। हमारी सोच को स्पष्ट करता है व नए उदाहरण से हमारी धारणाओं को पुष्ट करता है। यह हमारे भावजगत् को फैलाता है। हमारे भीतर सच्चाई को सहलाता है। तभी तो इसे मन बहलाने का साधन भी कहते हैं। यह मन को नहीं हमारे दुःखों को भी धोता है। व हमारे मूल्यों को मजबूत करता है। तभी तो कहते हैं कि मनोरंजन के वे साधन अच्छे हैं, जो उच्च मूल्यों को बढ़ावा देते हैं।

मनोरंजन से मनुष्य के मन का बोझ हलका होता है तथा मस्तिष्क और नसों का तनाव दूर होता है। इससे नवजीवन का संचार होता है। पाचन-क्रिया भी ठीक होती है। देह को रक्त संचार में सहायता मिलती है। विज्ञान ने हमारी मनोवृत्ति को बहुत बदल दिया है। बहुत सारे साधनों से मनोरंजन के साथ-साथ पर्याप्त व्यायाम भी होता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि अति सर्वत्र बुरी है। इसलिए समयानुसार ही मनोरंजन करना चाहिए। मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानार्जन भी होना चाहिए। सस्ता मनोरंजन बहुमूल्य समय को नष्ट करता है। मनोरंजन के साधन से हमारी रुचि, दृष्टिकोण एवं स्तर का पता चलता है। विनाश और पतन की ओर ले जाने वाले मनोरंजन से अवश्य बचना चाहिए। मनोरंजन वही बढ़िया है, जो हमारे ज्ञान एवं चरित्र-बल को विकसित करे। स्वस्थ और सोद्देश्य मनोरंजन किसी भी स्वस्थ व समृद्ध समाज की मूलभूत आवश्यकता होता है और पहचान भी।

मनोरंजन का प्रबंधन स्वयं को राजी रखने हेतु बहुत जरूरी है। किसी भी तरह से स्वयं को खुश रखें। मनोरंजन उद्योग निरंतर फैलता जा रहा है। इसकी दिशा व दशा किसी से छिपी नहीं है। कम-से-कम उसे आज स्वस्थ तो नहीं कहा जा सकता है। बाजारवाद व विज्ञापन इसे तय करते हैं। हम नहीं जानते कि मनोरंजन का स्वरूप कैसा होना चाहिए? हमें कैसा मनोरंजन चाहिए? हमें क्या अच्छा लगता है व क्या हमें तरोताजा करता है? कहाँ हमें आनंद आता है?

आज मनोरंजन के साधन बाजारवाद के शिकार हो गए हैं। उनमें तरह-तरह की विकृतियाँ आ गई हैं। तभी तो जीवन से स्वस्थ मनोरंजन गायब होता जा रहा है। फूहड़ता, हास्य, व्यंग्य, टाँग खिंचाई ही रह गए हैं। सांस्कृतिक शून्यता के माहौल में नग्नता, अश्लीलता, फूहड़ता ही राहत देते हैं। हमारे यहाँ सांस्कृतिक-शून्य कुछ ऐसा है कि ऊब के मारे लोग वक्त काटने के लिए मनोरजंन के नाम पर कुछ भी बरदाश्त कर लेते हैं।

ऊब का अर्थ है—अनचाहे काम में डूबे रहना। थके-माँदे दर्शक ऊब के शिकार हैं। आजकल सीरियल ऊब से ऊब को मारने के प्रयास हैं। यह वैसा ही है जैसाकि निराशा दूर करने के लिए शराब पीना। जबकि मेडिकल साईंस शराब को निराशा बढ़ाने वाला पेय मानती है।

जैसा कि मैं आधी सदी पार करके भी नहीं जानता कि मुझे क्या अच्छा लगता है। मुझे कहाँ से ताजगी मिल सकती है? फिल्म का स्वाद लेना मुझे नहीं आता है। निर्मल आनंद से मेरा वास्ता कम ही पड़ता है। फिल्म का मजा कैसे लेना?

मनोरंजन हेतु उपाय

1. खेल खेलें—खेल मनोरंजन का सबसे बड़ा व सही स्रोत है। किसी भी तरह से खेलना अच्छा है। खेलने से शारीरिक व मानसिक विकास होता है। खेलने से व्यक्तित्व का विकास होता है। शारीरिक श्रम भी इसमें हो जाता है। क्रिकेट, बैडमिंटन घर के बाहर परिजनों व दोस्तों के साथ खेल सकते हैं। टी.वी. पर क्रिकेट देखना मनोरंजन है। लेकिन क्रिकेट खेलना उससे भी बड़ा मनोरंजन है। बच्चों की तरह सरलता से खेलें।

2. तय कर फिर धारावाहिक देखें—हास्य प्रधान, टेलेंट हंट शो आदि धारावाहिकों को देखने का निर्णय कर फिर देखें। बिना योजना के टी.वी. के सामने बैठकर रिमोट के बटन न दबाते रहें कि कोई अच्छा कार्यक्रम देखने को मिलेगा। इस तरह समय न खोएँ, न विज्ञापनों के शिकार बनें।

3. फिल्म आस्वाद सीखें—फिल्म का मजा लेने की कला सीखें। मसाला फिल्में सार्थक फिल्म से कैसे भिन्न हैं। कला फिल्मों में क्या होता है? फिल्मी आस्वाद पर हमें किशोरावस्था में पढ़ाया जाना चाहिए। हास्य प्रधान फिल्में 'हेरा-फेरी', 'गोलमाल' आदि देखें।

4. सामाजिक उत्सवों में रस लें—होली, दीपावली, राखी, नववर्ष, ईद आदि त्योहार उत्साहपूर्वक मनाने चाहिए, ताकि दैनिक कार्यों की रुटीन टूटे, उसमें रस आए। जब भी जहाँ भी नाचने का मौका मिले तो नाचना चाहिए, जिससे तन व मन हलका होगा। अपने गाँव व शहर के उत्सवों में भाग लें। घर में त्योहारों को मनाएँ। इससे संबंध मजबूत होते हैं।

5. यात्रा करें—घर से बाहर निकलें, पिकनिक जाएँ, प्रकृति भ्रमण करें, इससे आपको अच्छा लगेगा। भ्रमण प्रकृति के निकट जाना है जो कि आनंददायक है। पिकनिक में नहाने का जुगाड़ हो सके तो जरूर नहाएँ। मौका मिले तो नहाएँ अवश्य।

6. पुस्तकें पढ़ना—पुस्तकें हमारी सबसे बड़ी मित्र हैं। लोकमान्य तिलक ने एक बार कहा था, "अच्छी पुस्तकों का साथ हो तो नरक भी स्वर्ग बन सकता है।" इसलिए घर में अच्छी पुस्तकें रखनी चाहिए एवं पढ़नी चाहिए। पुस्तकें हमारा मानसिक भोजन हैं। जब भी मौका मिले व फुरसत हो तो अच्छी पुस्तकें पढ़ें। ये आपके मस्तिष्क को विकसित करती हैं, जिससे आपका ज्ञान भी बढ़ेगा, नई बातें मिलेंगी व व्यक्तित्व खिलेगा।

कुछ लोग ताजा होने हेतु नकारात्मक मनोरंजन के शिकार हो जाते हैं। शराब, तंबाकू, विविध प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन, परस्त्री गमन आदि व्यसन हैं। इनसे व्यक्ति दीर्घकाल में निराशा व कुंठा बढ़ाता है। अपने को नशे में न डुबाएँ। नशा तत्क्षण आपको भुलाता है, फंतासी में ले जाता है। व्यक्ति को किसी भी तरह से किसी भी रूप में स्वस्थ नहीं बनाता है। रवींद्रनाथ टैगोर ने बचपन में स्कूल छोड़ दिया था, लेकिन शौकवश लिखते रहे तो एक दिन नोबल पुरस्कार जीता। शौक आपको रचनाशील बनाता है। यह हमें कई बार जीवन की दिशा भी देने लगता है।

7. अपना शौक विकसित करें—अपने शौक को पहचानें कि आपको क्या करना अच्छा लगता है। फोटोग्राफी, पेंटिंग, राइटिंग, डाक टिकट-संग्रह आदि जो भी हो, उसे समय दें। फुरसत के क्षणों में शौक पूरा करें, उससे आपको प्रसन्नता मिलेगी।

मनोरंजन जख्मों को भरता है, रोगों को आपस में जोड़ता है। जीवन में फैले अकेलेपन को भरता है। यह कई मर्जों की दवा है। सिनेमा नैतिकता ही नहीं पढ़ाता बल्कि सामाजिक चिकित्सा भी करता है। हमारी विभिन्नताओं को मिलाता है।

7

बुढ़ापे को चुनौती

"वृद्धावस्था एक प्रज्ञा अपराध का परिणाम है।"

—दीपक चोपड़ा

दुनिया से तबीयत हटती है, खालिक की तरफ दिल झुकता है,

दुनिया जिसे बुढ़ापा कहती, दरअसल जवानी होती है।

जीवन का तीसरा प्रहर सार्थक करें—

हमारे जीवन का उत्तरार्द्ध स्वर्णिम हो सकता है यदि हम ध्यान दें। हमारी संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन का लक्ष्य 'अदीनाः श्याम शरदः शतं'—हम दीन न होते हुए सौ वर्ष जीएँ।

हमारी संस्कृति में चार आश्रमों की व्यवस्था की गई है। वह आध्यात्मिक प्रगति व सामाजिक जीवन हेतु श्रेष्ठतम है। आश्रम व्यवस्था में सौ वर्ष में से प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम के होते हैं, जिसमें परमात्मा के ज्ञान के स्वरूप की उपासना की जाती है। ब्रह्म को 'सत्यं ज्ञानमनंतम्' कहकर परिभाषित किया जाता है। दूसरे पच्चीस वर्ष गृहस्थ जीवन के होते हैं, जिनमें ब्रह्म के कर्मरूप की उपासना की जाती है। पचास से पिचहतर वर्ष तक का काल वानप्रस्थ जीवन का होता है, जिसमें ब्रह्म की ईश्वर रूप में उपासना की जाती है और अंतिम पच्चीस वर्ष में संन्यास ग्रहण करके ब्रह्म के सत्य स्वरूप की उपासना की जाती है। यों सारा जीवन ब्रह्म के प्रति समर्पित होता है। पचास की उम्र पार करने के बाद व्यक्ति को घर में रहते हुए सार्थक जीवन जीना चाहिए। इस तीसरे प्रहर को वानप्रस्थ कहते हैं।

शरीर ही जीवन का आधार है, यह पश्चिम की धारणा है; अतः उनके अनुसार हम बूढ़े होते हैं। चूँकि शरीर वृद्ध होता है, हम बूढ़े नहीं होते हैं। सत्यतः वृद्धावस्था एक भूल है। उनके अनुसार यह जीवन का संध्या-काल है। अतः शांति से जीएँ व आराम करें।

शरीर की उम्र बढ़ना स्वाभाविक है। जैविक उम्र तो समय के साथ निरंतर बढ़ती जाती है। लेकिन मानसिक रूप से उम्र न बढ़े, उसका प्रबंधन संभव है। उम्र शरीर

की होती है। हम मात्र शरीर नहीं हैं। हमारी स्वीकृति के बिना शरीर कभी बूढ़ा नहीं हो सकता है। बुढ़ापा शरीर की उम्र से अधिक एक मानसिक अवस्था है। यह विचारों का परिणाम है, अतः इससे बचा जा सकता। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों से प्रकट हुआ है कि मनुष्य अपनी उम्र बारह वर्ष तक कम कर सकता है।

हमारी संस्कृति के अनुसार हम मात्र शरीर नहीं हैं। इसमें रहने वाली सजग चेतना हम ही हैं, जो कभी वृद्ध नहीं होती है। यह समय के पार है अर्थात् हम विकसित होते हैं। बुढ़ापा जीवन की परिपक्वता है। इसमें हमें अपनी सुगंध बिखेरनी चाहिए। अर्थात् हमारे यहाँ वानप्रस्थ जीवन जीने की अवधारणा है। घर में रहते हुए निर्मोही होने का अभ्यास करना है। वृद्धावस्था के पंचशील निम्न हैं—

वृद्धावस्था के पंचशील

- संसार के प्रति विरक्ति का भाव
- परिवार में न्यूनतम हस्तक्षेप
- संयम
- सेवा
- स्वाध्याय

वानप्रस्थी घर में तटस्थ होकर जीता है। पुत्रों को जिम्मेदारी सौंप देता है तथा माँगने पर ही उन्हें सलाह देता है। घर के संयोजन में दखल नहीं देता है। अपनी पसंद को दूसरों पर नहीं थोपता है। स्वयं को जिम्मेदारियों से मुक्त रखता है। प्रार्थना व आत्मचिंतन बढ़ाता है। वानप्रस्थी का मुख्य धर्म सेवा है। अतः वह समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझता है व परिवार के बजाय समाज को अधिक समय देता है।

बुढ़ापे में स्वयं को स्वस्थ रखना, बच्चों के साथ सामंजस्य करना, जीवनसाथी के चले जाने पर अकेले रहना व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रहना आदि बातें प्रमुख हैं।

आधुनिक खोजों से प्रमाणित हुआ है कि मनुष्य का शरीर एक सौ पचास वर्ष तक जीवित रह सकता है। लेकिन हम इसके साथ बुरा व्यवहार कर इसे थका डालते हैं। तभी तो चालीस की उम्र तक आते-आते हम में से अधिकांश किसी-न-किसी रोग के शिकार हो जाते हैं। किसी का रक्तचाप बढ़ जाता है तो किसी को मधुमेह है। किसी को भोजन नहीं पचता है तो किसी को शरीर में दर्द रहता है। कभी नींद उड़ जाती है तो कभी मन उचट जाता है। ये सब शरीर के साथ हमारी ज्यादती के परिणाम हैं।

जवानी की लापरवाही: वृद्धावस्था में बीमारी

मेरा बेटा वीतराग अमरीका में पढ़ाई के दौरान उसकी दोस्त ऐमी की चाची के घर गया। वह निन्यानबे वर्ष की हैं। इस उम्र में अकेली रहती हैं। अपना स्वयं का सारा काम खुद ही करती हैं। अपना खाना बनाना, बाजार में शॉपिंग करना, खुद की कार को ड्राइव करना। मात्र रात्रि को सोते वक्त अपना फोन पास के थाने से जोड़ देती हैं, ताकि आपात काल में पुलिस को बुलाया जा सके। बेटे ने उनकी सेहत का राज पूछा तो ज्ञात हुआ कि वे अपने खान-पान, व्यायाम एवं सोच पर शुरू से ध्यान देती रही हैं। तभी निन्यानबे वर्ष की उम्र में भी फिट हैं। यह उदाहरण हमें अपने को स्वस्थ रहने की प्रेरणा देता है। यदि हम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें तो सौ वर्ष तक आत्मनिर्भर रह सकते हैं।

हमारे अपने स्ट्रेस, खुद की थकान व व्यायाम न करने के कारण हम जल्दी बूढ़े हो जाते हैं। अपने भोजन को नियमित कर अपने को स्वस्थ रखें। तेल, वसा, भारी खाना न लें। अपना ध्यान अभी से रखें, ताकि वृद्ध हों, लेकिन स्वस्थ हों।

वृद्धावस्था एक भूल है। हिंदी फिल्म अवतार व बागवान बुढ़ापे पर सार्थक फिल्में हैं, जिनमें कर्म करने की प्रेरणा है। जीवन को सार्थक बनाने हेतु बुढ़ापे का सुनियोजन जरूरी है।

उम्र वृद्धि रोकने के उपाय

1. व्यस्त रहें

जीवन कर्म-प्रधान है। कार्य करने में प्रसन्नता होती है। कार्य के बगैर हम बोर होते हैं। रिटायरमेंट के बाद भी कार्य करना बंद न करें। खुद को व्यस्त रखने के लिए कोई भी सार्थक कार्य करें। नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री बनने से पूर्व बीमार थे। कार्य आते ही स्वस्थ हो गए। पंडित सातवलेकर बड़ौदा विश्वविद्यालय में चित्रकला के प्राध्यापक थे। रिटायर होने के बाद उन्होंने संस्कृत सीखी व वेदों पर प्रसिद्ध भाष्य लिखे। हमें सदैव सक्रिय जीवन जीना चाहिए। जब तक शरीर साथ दे तब तक हमें कर्म करना नहीं छोड़ना चाहिए। कर्म ही जीवन है, इसलिए कोई-न-कोई सार्थक कार्य करने से वृद्धावस्था का भूत नहीं सताता है। कार्य में व्यस्तता नकारात्मक होने से बचाती है। सक्रिय रहने से तंदुरुस्ती रहती है।

विनोबा भावे ने लिखा है कि जब व्यक्ति ज्ञान में परिपक्व हो जाए और परिवार के प्रति अपने सांसारिक दायित्वों को पूर्ण कर ले, तब वह अपना शेष जीवन, अर्जित ज्ञान और तकनीकी-कौशल को समाज के कल्याण के लिए नियोजित

कर दे। किसी भी सेवा कार्य में सक्रिय हिस्सा लेकर प्रसन्न रहा जा सकता है। आत्मनिर्भर क्रियाशील रहते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करनी चाहिए।

2. प्राकृतिक जीवन जीएँ

मनुष्य प्रकृति में से ही जनमा है, अतः उसे प्रकृति अनुसार ही जीवनयापन करना चाहिए। प्रकृति की गोद में रहे व बीमारी की अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाए। मेरे मित्र पूर्व डीन डॉ. आर.सी. मेहता, पति-पत्नी दोनों अस्सी को पार करके भी तपोवन आश्रम में मस्ती से जीते हैं।

3. तनाव न पालें

वृद्धावस्था के अपने तनाव हैं। घर में आपको कोई पूछता नहीं है, सबसे अलग-थलग पड़ जाना, किसी-न-किसी रोग से ग्रसित होना, जीवनसाथी का चले जाना, पुत्र/पुत्री के दुःख आदि वृद्धावस्था में चुभते हैं।

अपना ध्यान अपने शरीर को स्वस्थ रखने एवं स्वयं को व्यस्त रखने में लगाएँ। वृद्धावस्था के अधिकांश विचार मानसिक हैं, स्वतः ही कम होंगे। जितना हम विचारों में डूबेंगे, उतने ही व्यथित होंगे।

बीसवीं सदी में स्वास्थ्य का सबसे बड़ा दुश्मन तनाव है। तनाव से बुढ़ापा शीघ्र आता है, इसलिए तनाव मुक्त रहना जरूरी है। तनाव हम पैदा करते हैं तो हम उसे रोक भी सकते हैं। इसलिए सभी प्रकार के तनाव से बचें व प्रसन्न एवं सकारात्मक रहें। जब हम प्रसन्न होते हैं तो कोई भी तनाव हमारे पास नहीं आ सकता है। इसके लिए लेखक की कृति 'तनाव छोड़ें-सफलता पाएँ' का अध्ययन किया जा सकता है। जिसमें तनाव कम करने के बहुत से उपाय दिए हुए हैं। स्वयं को स्वस्थ रखने हेतु नियमित घूमें, व्यायाम व ध्यानादि करें।

4. कम भोजन करें

अमरीका के बाल्टीमोर स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजिंग के जेरोंटोलॉजी रिसर्च सेंटर में वृद्धावस्था को टालने के बारे में चल रहे एक अनुसंधान से पता चला है कि कम खाने से जीवन को लंबा किया जा सकता है। इस संस्थान में चूहे और बिल्लियों पर किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि जरूरी पोषक तत्त्वों की मात्रा को कम किए बगैर अगर उनके भोजन की मात्रा 30 से 70 प्रतिशत तक घटा दी जाए तो उनकी उम्र में आश्चर्यजनक ढंग से वृद्धि हो जाती है।

जिन्होंने सक्रिय दीर्घ जीवन जीया

- 101 वर्ष तक मोहनसिंह ओबेराय अपनी होटलों का नियंत्रण करते रहे।
- नीरज सी. चौधरी 101 वर्ष तक अनवरत लिखते रहे।
- मुल्कराज आनंद 99 वर्ष तक लिखते रहे।
- भारत रत्न उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ 90 वर्ष की उम्र तक शहनाई बजाते रहे।
- घनश्याम दास बिड़ला 90 वर्ष तक उद्योगों का संचालन करते रहे।
- जे.आर.डी. टाटा को 88 वर्ष की उम्र में भारत रत्न मिला।
- विनोबा भावे 87 वर्ष तक मिशन में जुटे रहे।
- मोरारजी देसाई 80 वर्ष की उम्र के बाद प्रधानमंत्री बने।
- अटल बिहारी वाजपेयी 75 वर्ष की उम्र में दूसरी बार प्रधानमंत्री बने।
- एम.एफ. हुसैन 95 वर्ष की उम्र तक पेंटिंग करते रहे।

सामान्यतः व्यक्ति भोजन की कमी से कम बीमार पड़ता है, हममें से अधिकांश व्यक्ति भोजन की अधिकता के शिकार हैं। तभी तो नोबल पुरस्कार विजेता लिनस पॉलिंग की पुस्तक 'हाउ टू लिव लोंगर एंड फील बेटर' में लिखा है कि आप जो भी खाना खाते हैं, वह पच्चीस प्रतिशत आपके पेट के लिए होता है, शेष पिचहत्तर प्रतिशत डॉक्टरों के पेट के लिए होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि भोजन की मात्रा कम करें।

इसी पुस्तक के अध्याय छह में 'स्वस्थ कैसे रहें' में आहार का पूरा वर्णन दिया गया है।

उम्र का पतझड़ कैसे बने जीवन का वसंत

खुद से भागकर खुद को नहीं पाया जा सकता है। वृद्धावस्था अभिशाप नहीं है, यह परिपक्वता है। जीवन की खुशियों को जीने का समय है। अभी तक जो सीखा है, अनुभव किया है, कमाया है, उसको आधार बनाकर भोगने व मौज करने का अवसर है। बचे कर्म, अधूरे सपने, मन का जीने का क्षण है। दूसरों पर ध्यान न देकर स्वयं के पास आओ। बुढ़ापा चुनौती है। आनंद का समय है, जहाँ पर आपके पास अनुभवों का पिटारा है। जीने की कोई उम्र नहीं होती है। यह आपके भीतर की उमंग व कौशल पर निर्भर है। स्वयं को कोसने, असहाय होने, अकेले होने, परिजनों पर भार बनने हेतु बुढ़ापा नहीं है। यह नया जीवन जीने का वक्त है। यह नई खोज की यात्रा का समय है।

जब शरीर शिथिल, रोगी या कमजोर हो भी जाए तो उसे शरीर की व्याधि मानें। अपना मन छोटा करने की जरूरत नहीं है। आप शरीर के पार हैं। इस रुपाकार शरीर से पार आप हैं। आप ऊर्जा के पिंड हैं। आप ही समग्रता हैं। आप ही विश्व हैं। ध्यान के द्वारा अपनी संवेदनशीलता बढ़ाकर, प्रतिपल सजग होकर स्वयं को विसर्जित कर सकते हैं। यह विसर्जन ही शाश्वत से जुड़ना है। शाश्वत का बोध हमारी समस्त समस्याओं का समाधान है। इसके लिए ध्यान के पाठ में विस्तार से वर्णन है।

बुढ़ापा राह देख रहा है, पास आ न सका

- प्रसिद्ध लेखक खुशवंत सिंह आज भी 95 वर्ष की उम्र में सक्रिय हैं एवं अपना कॉलम लिखते हैं।
- हरगोविंद खुराना 92 वर्ष की उम्र में भी शोधरत हैं।
- रविशंकर 90 वर्ष के होकर भी सितार बजाते हैं।
- 90 वर्षीय जोहरा सहगल आज भी एक्टिंग में व्यस्त हैं।
- देवानंद 87 वर्ष की उम्र में आज भी सक्रिय हैं।
- 87 वर्षीय कुलदीप नैयर आज भी नियमित लेखन करते हैं।
- पद्मश्री श्रीधरन 78 वर्ष के बाद भी मैट्रो का जाल बिछाने में व्यस्त हैं।

8

जानलेवा रोगों का सामना कैसे करें

> *"कैंसर जैसा प्राणघातक रोग भी बाहरी हमला न होकर आंतरिक विघटन की स्थिति है।"*
>
> *—कार्ल सिमंटन*

सभी रोगों का इलाज है, लेकिन सभी रोगियों का इलाज नहीं किया जा सकता; क्योंकि कुछ में धैर्य नहीं होता है। तभी तो कहा जाता है कि शारीरिक एवं मानसिक तनाव को कम किए बिना किसी भी प्रकार की बीमारी एवं दर्द पर नियंत्रण पाना संभव नहीं है।

घातक बीमारी का नाम ही रोगी एवं उसके परिजनों को डरा देता है। इसका पता लगते ही बीमार व उसके परिजन डर जाते हैं। ऐसे में मरीज को अपनी मृत्यु सन्निकट नजर आती है व उसके आश्रितों को अलग तरह का भय होता है। रोगी को तनावों का सामना कैसे करना चाहिए व परिवारजनों को तनावों पर क्या करना चाहिए, इस पर गंभीरता से विचार आवश्यक है।

रोंगों का सामना करने के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ होना जरूरी है। हमारी सबसे बड़ी समस्या रोग नहीं, बल्कि उसके प्रति होने वाली प्रतिक्रिया एवं प्रतिरोध है। प्रतिरोध का अर्थ स्वयं से लड़ना एवं भयभीत होना है। प्रतिक्रिया से बचने की कला में प्रवीण होकर ही हम रोगों से बच सकते हैं। कभी भी बीमारी का इतना दर्द नहीं होता, जितना रोगों के प्रति प्रतिक्रिया में होता है। हम रोगों से डर जाते हैं। आशंकाएँ सताने लगती हैं। हम अपने विश्वास को खो देते हैं। हमारा आत्मबल कमजोर हो जाता है। हम चिंताओं में डूब जाते हैं। रोग से अधिक परेशानी उसकी चिंता करने से होती है। असली परेशानी रोग की नहीं, रोग के भय की होती है।

यदि आप भौतिक स्तर पर जीते हैं तो आपको भौतिक उपचार से ही लाभ हो सकता है। ऐसे में औषधि लेना ही उपयुक्त मार्ग है। जब ऐसा रोगी प्राणिक (मानसिक) शक्तियों से अपरिचित होता है तो उनका उपयोग नहीं कर सकता है।

बीमारी पहले मन में, मस्तिष्क में, फिर तन में

सामान्यतः रोग पहले हमारी भावनाओं में आते हैं। उसके बाद विचारों में आते हैं, फिर स्थूल देह में उनका प्रकटीकरण होता है। जैसाकि किरलियन फोटोग्राफी आज इसे प्रमाणित करती है। हमारे भाव-शरीर यानी आभामंडल में रोग के लक्षण छह माह पूर्व दिखने लगते हैं। जब किरलियन फोटोग्राफी हमारे भाव-शरीर का चित्र खींचती है, भौतिक शरीर में होनेवाली गाँठ के छह माह पूर्व ही भाव शरीर में गाँठ के स्थान पर काला धब्बा देखा जा सकता है। मानव देह की सबसे छोटी इकाई कोशिका है। प्रत्येक कोशिका पदार्थ से बनी होती है। पदार्थ का वह सबसे छोटा कण, जिसका कोई आकार व भार होता है, उसे परमाणु कहते हैं। परमाणु को पुनः तोड़ने पर विज्ञान ने एक तरंग एवं कण पाए हैं, जो कभी तरंग होता है व कभी कण, जिसे क्वांटम कहते हैं। क्वांटम वे ऊर्जाकण हैं जो अदृश्य हैं। प्रत्येक दृश्य पदार्थ के पीछे अदृश्य क्वांटम का सहयोग होता है।

सूक्ष्म शरीर की विचार-तरंगें व संवेदनाएँ बाधित होती हैं तो शरीर के तल पर अनेक रोग उभर आते हैं।

मानव मस्तिष्क एक सुपर कंप्यूटर की तरह है, जिसमें बहुत सी धारणाओं के सॉफ्टवेअर लगे होते हैं। इंप्रेशंस के लेन-देन से सॉफ्टवेअर अपडेट होते रहते हैं। इसके की-बोर्ड का बटन दबाने पर मॉनीटर पर सी.पी.यू. में उपलब्ध सॉफ्टवेअर जैसा प्रोसेस करता है, वैसा परिणाम आता है। लक्ष्य प्राप्ति हेतु 'की-बोर्ड' के बटन दबाने से परिणाम तो सी.पी.यू. में उपलब्ध प्रोग्राम होने पर ही आता है। अर्थात् मानव देह ब्रह्मांड की अभिव्यक्ति है। जिन तत्त्वों और शक्तियों से ब्रह्मांड बना है, उन्हीं से हमारा शरीर, मस्तिष्क एवं आत्मा बनती है। 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे।' सूक्ष्म और विराट् दोनों एक हैं। मानव देह और ब्रह्मांडीय देह एक ही हैं। यही सनातन धर्म का सार है।

जानलेवा रोगों का सामना कैसे करें

1. दृढ़ मानसिक संकल्प—मजबूत इरादा, स्वयं में विश्वास

यदि आपकी मानसिक शक्तियाँ विकसित हैं, आप उनका प्रयोग करना जानते हैं तो आप अपनी शारीरिक व्याधि भी मानसिक शक्तियों द्वारा ठीक कर सकते हैं। मानसिक शक्तियाँ भौतिक शक्तियों से अधिक शक्तिशाली होती हैं। सूक्ष्म सदैव स्थूल से ज्यादा शक्तिशाली होता है। आत्मिक शक्तियों का जानकार व्यक्ति उनका प्रयोग कर रोग से प्रभावित नहीं होता है। आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा भी रोग का शमन हो सकता है। लेकिन इन शक्तियों का जानकार शरीर के रोगों की परवाह नहीं करता है। वह शरीर से ऊपर उठ चुका होता है। यद्यपि

ऐसा व्यक्ति चाहे तो क्षण भर में तन की पीड़ा को मिटा सकता है। चूँकि वह तन से स्वयं को भिन्न मानता है, अतः अपने स्वयं के दर्द का भी साक्षी हो जाता है।

हमारी देह की हर वस्तु संकल्प के झटके के साथ बदली जा सकती है। संकल्प शक्ति से बढ़कर बड़ी कोई शक्ति रोगों से लड़ने में सहायक नहीं है। इस शक्ति को अलग-अलग लोग अलग-अलग नाम से जानते हैं? आत्म-विश्वास, जीवनी-शक्ति, प्रतिरोधक शक्ति, हिम्मत, प्राकृतिक शक्ति, प्रभु की कृपा, गुरु का आशीर्वाद, आरोग्य शक्ति आदि। मानव देह अपने आप में दवाइयों का कारखाना है। लेकिन आपको संकल्प शक्ति द्वारा प्राप्त निर्देशों का उपयोग करना आना आवश्यक है। जीवन-शैली बदलकर हम अपनी बीमारियों से लड़ सकते हैं। हम ही जाने-अनजाने अपने को बीमार करते हैं। रोग धीरे-धीरे पहले हमारे जेहन में आते हैं, फिर शरीर में प्रकट होते हैं।

बीमारी से लड़ने का एकमात्र उपाय है इच्छाशक्ति। इच्छाशक्ति के बगैर जैसे आप जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते, उसी प्रकार बीमारी से भी नहीं उबर सकते। आप कितनी भी दवाइया ले लें, कितने ही डॉक्टर को दिखा दें, कितना ही इलाज करवा लें, ठीक नहीं होंगे जब तक आप में ठीक होने की इच्छाशक्ति नहीं है। दूसरी तरफ इच्छाशक्ति मात्र से ही आप ठीक हो सकते हैं। जबकि आपने दवाई भी नहीं खाई है। यह दृढ़ संकल्प 'मैं स्वस्थ हूँ' किसी भी बीमारी का अचूक इलाज है।

साधारणतया हम शरीर को ही सबकुछ समझते हैं। सारे प्रयास शरीर को ठीक रखने के लिए ही करते हैं, जबकि शरीर से अलग जो मन है, जीव है, आत्मा है, जो जीवित तत्त्व है, उसे भूल जाते हैं। उसकी स्वस्थता का हम ध्यान नहीं रखते हैं। यहाँ तक कि उसके बारे में सोचते ही नहीं हैं। यही बीमारी की मूल जड़ है। चाहते सभी हैं कि स्वस्थ रहें, पर कैसे? कैसे बढ़ाए इच्छाशक्ति को।

मेरी मित्र अजब ने मुझे बताया कि कैसे उसने संकल्प द्वारा अपने रोग को भगाया। उन्हीं के शब्दो में—"जब मुझे अत्यधिक जुकाम होता था तब मैं कुछ एंटीएलर्जिक गोलियाँ सिरहाने रखती थी। रात के समय आधा घंटा जागते रहना भी ऐसा लगता है जैसे कई घंटों से जाग रही हूँ। पंद्रह-बीस मिनट जगने, नाक बंद होने पर ऐसा लगता जैसे सारी रात से जग रही हूँ एवं जब जाग रही हूँ तो सवेरे उठकर दिन भर कार्य कैसे कर पाऊँगी? दिमाग में पचासों तरह के 'यदि' और 'लेकिन' चलते रहते। ऐसे में मैं गोली और पानी दोनों को पास रखती थी। फिर बस लाइट जलाने भर की देरी होती। इच्छा-शक्ति कमजोर होने लगती और गोली मुँह में। ऐसा तीन-चार रोज जारी रहता। एक निश्चित समय पर आँख खुलती और मैं गोली खा लेती। फिर डरने लगी कि आदत बनते

देर नहीं लगती है। फिर रात को गोली सिरहाने से हटा ली। दूसरे कमरे में रख दी। निश्चित समय आँख खुली, गोली की तलब हुई। लेकिन पानी ही पास था, पिया, कुछ उधेड़बुन की गोली लेने बिस्तर छोड़ा जाए या नहीं। और मैं सो गई। तीन-चार दिन में ही इच्छाशक्ति की जीत हुई। इसलिए बीमारी के वक्त यदि उससे बिना दवाई लड़ना है तो प्रबल इच्छाशक्ति रखते हुए दवाई 'पहुँच' के बाहर रखें।"

असाध्य मानसिक या शारीरिक रोग की जड़ें सदा ही गहरे अवचेतन मन में होती हैं। छिपी हुई जड़ों को उखाड़कर रोग को ठीक किया जा सकता है।

कहा भी गया है कि शरीर स्वस्थ है और मन अस्वस्थ है तो विश्वास रखें—शरीर भी अस्वस्थ हो जाएगा। किंतु शरीर अस्वस्थ है और मन स्वस्थ हो तो विश्वास रखें—शरीर अपने आप स्वस्थ हो जाएगा।

देह अपना उपचार स्वयं करती है

सभी बीमारियाँ पहले मस्तिष्क में जन्म लेती हैं। जब तक मानसिक पैटर्न उस अनुरुप न बन जाए, तब तक वह शरीर पर प्रकट नहीं होती है। अपने शरीर का प्रिंटआउट बदलने के लिए आपको अपने मस्तिष्क के सॉफ्टवेअर को नए सिरे से बदलना पड़ेगा। हमारी सोच ही रोग की जनक है। हम ही अपने रोगों को चुनते हैं, उन्हें नियंत्रित करते हैं, उन्हें बढ़ने की सुविधाएँ देते हैं। हम रोगों का चेतन मन द्वारा चयन नहीं करते हैं, यह चयन मन के अचेतन स्तर पर छुपे हुए तलों पर चुपचाप होता है। यदि कोई ऐसी क्षमता हमारे पास है तो उसे नियंत्रित करने की क्षमता भी होनी चाहिए। अपनी भावनाएँ स्वस्थ रखकर हम स्वस्थ रह सकते हैं।

अचेतन रूप से रोग उत्पन्न करने के स्थान पर हम सचेतन रूप से स्वास्थ्य कैसे उत्पन्न करें?

मनुष्य की देह दवाएँ बनाने का कारखाना है। हमारी देह के उपचार में काम आनेवाली सभी दवाओं के केमिकल्स हमारी देह में बनाए जाते हैं। इन सब दवाओं का निर्माण हमारी सोच एवं भावनाओं पर निर्भर है। नकारात्मक सोच व नकारात्मक भावनाओं से हमारे सिक्रेशन प्रभावित होते हैं। दुनिया के सबसे धीमे मारने वाले भयंकर जहर भी इसी देह में बनते हैं।

संतुलित, सहज व नैसर्गिक देह स्वतः अपना उपचार करती है। देह में एक नैसर्गिक क्षमता है। देह स्वतः अपना उपचार करती है। यह स्वतः अपने को संतुलित करती है। जब देह का ताप बढ़ जाता है तो देह स्वतः ही उन रसायनों का निर्माण करती है, जो तत्त्व ताप घटाने में सहायक हों। यह कार्य स्वतः चलता

रहता है जब तक कि इस नैर्सगिक प्रकिया को बिगाड़ न दिया गया हो। बिगड़ने पर देह ताप समान नहीं रख पाती है तभी हमें ताप बढ़ने का ज्ञान होता है।

हमारी स्थूल देह के पीछे क्वांटम भौतिकीय देह जो कि सूक्ष्म है, अदृश्य है। स्थूल देह का जन्म इसी सूक्ष्म देह की बदौलत है। उसमें परिवर्तन इसी के आधार पर होते हैं।

वातावरण वास्तव में हमारी देह का विस्तार है। जैसे दो तारों व ग्रहों के बीच प्रत्यक्ष संबंध न होने के उपरांत भी संबंधित है। वैसे ही हमारी देह के अणुओं के बीच संबंध न होने के बावजूद संबंधित है।

हमारी देह का रूपाकार किसी शिल्प-कृति से कम नहीं है। भीतर बैठी प्रज्ञा का यह आवरण मूर्ति के रूप में दिखता है। इसके निश्चित आकार-प्रकार हैं। इसके साथ ही हमारी देह के परमाणु बहती हुई नदी की तरह हैं। हमारी देह में कुछ भी स्थायी नहीं है। हमारी कोशिकाओं के प्रत्येक कण बदलते जाते हैं। हमारी रक्त कणिकाएँ नब्बे दिन में बदल जाती हैं। हड्डियों का ठोस ढाँचा, जिसके चारों ओर शरीर लिपटा रहता है, वह स्वयं भी एक सौ बीस दिन में पूरी तरह बदल जाता है।

रोग शरीर में जमा हुए विषैले द्रव्यों को निकालने का प्रयास है। शरीर जिस रास्ते विष को बाहर निकालने का मार्ग चुनता है, उसी जरिए विषैले द्रव्य बाहर आते हैं।

शरीर की आंतरिक फार्मेसी को जगाएँ

शरीर का कोई रोग उसके उभार एवं लक्षण तक सीमित नहीं होता है। वह संपूर्ण शरीर तंत्र से सापेक्षित रूप से जुड़ा होता है। अच्छा चिकित्सा विज्ञान रोग का नहीं, रोगी का उपचार करता है।

मानव देह में कई तरह के रसायन बनाने की क्षमता है। सबसे अधिक तरह की दवाएँ बनाने वाला कारखाना धरती पर कही अन्यत्र नहीं, बल्कि हमारी देह में ही है। यहाँ सभी प्रकार की दवाएँ समय-समय पर आवश्यकतानुसार बनाई जाती हैं। हमारी ग्रंथियाँ के स्रावों से सभी आवश्यक रसायन देह में बनते हैं। दुनिया के अत्यंत धीमे जहर भी असंतुलन की अवस्था में हमारी यह देह बनाती है। हमें थकाने वाले, सताने वाले रसायन भी यह देह विकृत अवस्था में या दुरुपयोग करने पर बनाती है। दर्द को रोकने वाला पेनकिलर बनाती है तो दर्द पैदा करने वाला रसायन भी इसी देह में बनता है।

इस देह में सभी तरह की दवाएँ पैदा करने की क्षमता है। हम अपनी नकारात्मक सोच, असंतुलन, संदेह, विक्षोभ द्वारा हानिकारक रसायन भी पैदा कर सकते हैं तो सकारात्मक चिंतन, समता, आस्था आदि के द्वारा लाभप्रद दवाएँ भी पैदा कर सकते हैं।

जब हमारी प्रतिरोध शक्ति कमजोर पड़ जाती है तब देह बीमार पड़ती है। आंतरिक असंतुलन से व्यक्ति का स्वास्थ्य नरम पड़ता है। प्राणशक्ति की कमी से मनुष्य बीमार होता है।

मानव-देह ऊर्जा और प्रज्ञा का एक नेटवर्क है, न कि केवल हड्डियों का ढाँचा। अर्थात् हमारी देह की छोटी-से-छोटी इकाई क्वांटम है जो कि ऊर्जा का एक कण है। इस कण में विकास व वृद्धि स्वचालित है। इस विकास व वृद्धि की सूचना ही प्रज्ञा का नेटवर्क है। रोग शरीर को अक्षुण्ण रखने वाली क्वांटम तरंगों की संरचना में विकृतियों के फलस्वरूप परिवर्तन होते हैं।

वातावरण ही हमारा विस्तृत शरीर है। रोगों का कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति स्वयं ही है।

शरीर में रोग के अनुकूल दवा बनाने की क्षमता होती है और यदि उन क्षमताओं को बिना किसी बाह्य दवा और बिना आलंबन के विकसित किया जाता है तो उपचार अधिक प्रभावशाली, स्थायी एवं भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों से रहित होता है।

एलोपैथिक दवाएँ: मित्र या शत्रु

"औषधियाँ, इंजेक्शन इत्यादि हमारे सुखी जीवन के लिए अभिशाप हैं।"

—एनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिका

सभी विज्ञानों में औषधि विज्ञान सबसे ज्यादा अनिश्चित है। जिस प्रकार दीमक लगी लकड़ी पर रंग-रोगन करने से मजबूती नहीं आ सकती, थोड़ा सा स्पर्श होते ही टूट जाती है। कचरे को इकट्ठा रखने से उसमें उफान, सड़न, बदबू एवं रुकावट आने की समस्या खड़ी हो जाती है, ठीक इसी प्रकार दवाएँ शरीर की प्रतिरोधक क्षमता क्षीण करके कचरे को तो साफ नहीं करती, दीमक को तो नहीं हटातीं, पर रोगों के कारणों को मिटाने की जगह उसको दबाने अथवा रोग को अन्य रूप में प्रगट करने का मार्ग खोल देती हैं।

आज हमारे जीवन में दवाओं का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है कि थोड़ा सा सिरदर्द अथवा शरीर में थोडी सी अस्वस्थता आई नहीं कि तत्क्षण हम गोली

ले लेते हैं। दर्दशामक औषधि दर्द को दूर करने के लिए ली जाती है, पर याद रखें कि इन दमनकारी औषधियों का प्रभाव विनाशकारी है। तत्काल तो इनसे लाभ होता है, पर दीर्ंघकाल में इनसे हानि अधिक होती है। ये औषधियाँ हमारे शरीर के स्नायुओं को कमजोर करती हैं, परिणाम-स्वरूप हमारी संवेदनशक्ति कम होती है। तब हमारी ऐसी असहाय स्थिति हो जाती है जैसे किसी कारखाने में आग लगे और उसकी चेतावनी के रूप में घंटी के जरिए उसके मालिक को सूचित किया जाए, पर मालिक को जरा भी असुविधा पसंद नहीं, इसलिए वो घंटी का तार ही काट डाले। जिस से घंटी बजना तो बंद हो जाता है, पर आग रुकती नहीं और कारखाना भस्मीभूत हो जाता है। इस तरह दवाओं के प्रभाव से हमारी जीवनशक्ति को नुकसान पहुँचता है और शरीर अंदर-ही-अंदर विषाक्त होकर खत्म हो जाता है।

वास्तव में दवाओं का विचार ही भ्रामक और अस्थायी पाये पर आधारित है। सर कपूर कहते हैं, "औषधि-विज्ञान की उत्पत्ति मिथ्या, कल्पना और दिन प्रतिदिन बढ़ती मृत्यु पर हुई है। दवा का विरोध करना इसलिए आवश्यक है कि जैसे ही एक रोग की दवा लेने से उसके लक्षण दबते हैं तो दूसरे जटिल रोग उसके विकल्प में तैयार हो जाते हैं। दवा अपने जहरीले प्रभाव के द्वारा सिर्फ रोगों के लक्षणों का दमन करती है, परंतु बुनियादी रूप से जड़ को प्रभावित नहीं करती है।"

दवाओं की शक्ति प्रकृति की शक्तियों से अधिक नहीं होती है। हम अस्वस्थ होते हैं, डॉक्टरों की शरण में जाते हैं व दवाएँ लेते हैं। इसके बजाय हमें प्राकृतिक शक्तियों पर भरोसा कर सावधानी बरतनी चाहिए। औषधि मार्ग जो हमें रोगों के चुंगल में फँसाता रहता है और जीवन को तकलीफदेह बनाता है, उसे न अपनाएँ।

मानव शरीर बहुत लचीला व सहनशील है। छोटी-मोटी गलतियाँ, अनियमितता को वह निभा लेता है। लेकिन उसकी भी अपनी एक सीमा होती है, शरीर लाचार होकर ही बीमारी को प्रकट करता है।

क्या कोई सिद्ध पुरुष, महात्मा या तांत्रिक हमारे रोगों को ठीक कर सकता है? क्या ऐसे चमत्कार होते हैं?

एक दो प्रतिशत असाध्य रोगी भी ठीक हो जाते हैं, जिन्हें चिकित्सक ने ठीक न होने को कह दिया था कि अब इनका इलाज नहीं है, इन्हें घर ले जाओ व सेवा करो। इस तरह से ठीक होने वाले रोगियों के पास निश्चित कारण ज्ञात नहीं होता है। प्रत्यक्ष रूप से कार्य कारण के बीच संबंध बैठाना सरल नहीं है। कोई मंत्र जपना बताता है तो कोई गुरु कृपा। इन चमत्कारों से इनकार करना भी लेखक

के वश में नहीं है, साथ ही इन चमत्कारों को आधार बताना भी लेखक के वश में नहीं है। किसी भी चमत्कार से रोगी ठीक तो होते देखे जाते हैं, लेकिन उनका रिपीटेसन (दोहरान) होना नहीं पाया जाता है। वैसा का वैसा बार-बार नहीं होता है, इन पर चर्चा करना ठीक नहीं है, क्योंकि इनका सिद्धांत बनाना आसान नहीं है।

देह को एक दिन पंचतत्त्व में विलीन होना ही है। अतः उसे कोई-न-कोई कारण चाहिए। अतः शरीर पूरी तरह निरोग तो नहीं हो सकता है, लेकिन शरीर को होने वाली पीड़ा को कम जरूर किया जा सकता है। इसमें स्वीकार मात्र ही समाधान है। सजगता द्वारा शरीर को अधिक-से-अधिक निरोग रखा जा सकता है, मृत्यु से बचा तो नहीं जा सकता है; उसे स्वीकार कर उसे अप्रत्यक्ष रुप से जीता जा सकता है।

जीवन शैली से उत्पन्न रोग

हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा, अनिद्रा, तनाव/अवसाद, स्पॉन्डिलाइटिस, उदररोग, यौन क्षमता में कमी, गर्भपात या समय पूर्व प्रसव।

2. प्राणायाम-योगासन कर प्रतिरोध शक्ति बढ़ाएँ

स्वामी रामदेव, दिव्य योग मंदिर, हरिद्वार द्वारा मानव-देह को संतुलित कर प्रातः प्राणायाम व सात आसन करने की प्रेरणा दी जा रही है। मूलतः ये प्राणायाम स्वामीजी के शिविर में जाकर उनसे सीखे जा सकते हैं या किसी प्रशिक्षक के माध्यम से या टी.वी. पर देखकर किए जा सकते हैं। जिनका विस्तृत वर्णन उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'योग एवं चिकित्सा रहस्य' एवं 'प्राणायाम रहस्य' में विस्तृत रुप से उपलब्ध है।

प्राणायाम मात्र शारीरिक क्रियाएँ नहीं हैं। इनको भावपूर्ण तरीके से, संकल्प के साथ करने पर पूरा लाभ मिलता है। प्राणायाम को जोर से करने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें भाव से करना है, समर्पण के साथ करना है, पूरी श्रद्धा के साथ करना है, विराट् के साथ एक होकर करना है। भावमय होकर ओंकार के जप के साथ करें तो पाँच गुना लाभ बढ़ जाता है। प्राणायाम करते हुए भावना करें कि दैवीय शक्तियों की कृपा बरस रही है, मुक्त पुरुषों के आशीर्वाद मुझे मिल रहे हैं।

प्राणायाम करने से हमारे रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। प्राणों का प्रवाह शरीर में सुचारु रूप से होने लगता है। मन शांत रहता है, जिससे

अंतःस्त्रावी ग्रंथियों से हार्मोंस का स्त्राव नियमित होने लगता है। इससे मानव देह की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। इससे देह में व्याप्त रोग स्वतः ठीक होने लगते हैं। कपालभांति एवं अनुलोम-विलोम प्राणायाम स्वस्थ व्यक्ति को पाँच-दस मिनट प्रतिदिन व रोगी को दस-बीस मिनट प्रतिदिन करने की सलाह दी जाती है।

स्वामी रामदेव सात आसन भी करने के लिए कहते हैं। प्रतिदिन दस-पंद्रह मिनट तक मंडुकासन, शशकासन, पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, मकरासन, मर्कटासन एवं शलभासन करें। बीच-बीच में विश्राम हेतु सूक्ष्म व्यामाम भी सुझाते हैं। अपने रोग के अनुरूप प्राणायाम व आसन करने हेतु आप विशेषज्ञ व पुस्तकों से मार्गदर्शन लें। स्वामी रामदेव के आठ से चौदह नवंबर, दो हजार पाँच के उदयपुर शिविर की अपने अनुभवों के आधार पर ये बातें बता रहा हूँ।

योग मानसिक ग्रंथियों को भी खोलता है। योग व्यक्ति को व्यर्थ की सोच से ऊपर उठाता है तथा व्यक्ति के भीतर बैठी घृणा, ईर्ष्या, लोभ, काम आदि को मिटाता है। हम अपनी नकारात्मकता को पहचानने लगते हैं, जिससे उसकी मात्रा घटती है। आत्म-देह की पहचान जीवन की सार्थकता बताती है।

शरीर से मन की शक्ति बहुत ज्यादा है और मन से आत्मा की शक्ति अनंत गुना है। हम आत्मा की सत्ता को ही भूल गए हैं, जब हम आत्मा को जानेंगे तो मन की शक्ति जाग्रत् कर पाएँगे।

मन द्वारा स्वस्थ होने की क्षमता को पुनर्स्थापित करना है। देह को बनाने वाले डी.एन.ए. एवं डी.एन.ए. बनाने वाले मन को बदलना है।

मुख्यतः उपचार द्वारा ठीक होना मात्र शारीरिक क्रिया नहीं है, यह एक गहन जटिल जैविक, मानसिक एवं आत्मिक क्रिया है। जैसे परदे पर चित्र बनाने के पूर्व एक प्रक्रिया होती है, वैसे ही स्वस्थ होने के पीछे भी एक अमूर्त, सूक्ष्म जटिल प्रक्रिया है, जिसे देखा व छुआ नहीं जा सकता।

मानव देह मात्र जड़ पदार्थों के संयोग से नहीं बनती है। हम मात्र देह तक ही सीमित नहीं हैं। मनुष्य स्थूल भौतिक देह से परे भी होता है, जिसे सूक्ष्म मानसिक या परा कहते हैं। जिसे देखा नहीं जा सकता, उसे अगोचर कहते हैं, वही चेतना या आत्मा है।

कोई भी बीमारी मात्र स्थूल शरीर तक सीमित नहीं होती है। यह रोगी के पूरे जहन में होती है। इससे भाव शरीर, मनस शरीर भी पीड़ित होते हैं, सभी विकार ग्रस्त होते हैं। पूरा जीवन विकृत, अव्यवस्थित एवं असंतुलित होता है। बीमार

होने पर व्यक्ति जितना धन व समय स्वस्थ होने के लिए खर्च करता है, उसका दस प्रतिशत समय भी वह स्वस्थ रहते हुए शरीर को दे तो उसे बीमारी नहीं होगी।

3. संतुलित एवं पौष्टिक आहार लें

भोजन प्रबंधन—सदा स्वस्थ रहना है।

एक प्रसिद्ध कहावत है कि सुबह का नाश्ता राजाओं जैसा, दोपहर का भोजन राजकुमारों जैसा एवं रात का खाना भिखारियों जैसा करें।

आयुर्वेद में पथ्य-अपथ्य पर बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है। अतः उसके अनुरूप आहार लेना चाहिए। भोजन आपकी दवाई हो और दवाई आपका भोजन बने। औषधि जगत् के पितामह हिपोक्रेट्स ने ठीक ही कहा है—'स्वास्थ्य का सीधा संबंध आहार से है।' हमारी अधिकांश बीमारियाँ रसोईघर से पनपती हैं। तभी तो कहा जाता है कि आहार ही औषधि है।

इस संदर्भ में नोबल पुरस्कार विजेता डॉ. लिनेस पॉलिंग की पुस्तक 'हाउ टू लिव लोंगर एंड फील बेटर' तथा डॉ. नागेंद्र कुमार नीरज लिखित पुस्तक 'मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य' पढ़ें।

व्यक्ति को अपने वात, पित्त, कफ दोषों को पहचानकर उस अनुरूप भोजन करना चाहिए। इसके लिए पाठक दीपक चोपड़ा की पुस्तक 'संपूर्ण स्वास्थ्य' की मदद ले सकते हैं। जिसमें व्यक्ति की प्रकृति को पहचानने के लक्षण व प्रकृति के अनुसार खाद्य पदार्थों की सूची दी हुई है।

जैसाकि कहावतों से स्पष्ट है कि जैसा खावे अन्न, वैसा बने तन, जैसा बने तन वैसा होवे मन, जैसा मन वैसा विचार, जैसा विचार वैसा कर्म, जैसा कर्म वैसा फल, रोटी को आधा करें, सब्जी को दूना, पानी को तिगुना करें, हँसना चौगुना जो जीभ को अच्छा लगता हो वह जरूरी नहीं है कि पेट के लिए भी अच्छा हो।

अधिकांश बीमारियाँ प्रदूषित भोजन, अधिक भोजन व पौष्टिक आहार नहीं लेने के कारण होती हैं। आयुर्वेद तो सभी बीमारियों की जड़ व्यक्ति के भोजन को मानता है। उल्टी-दस्त, हैजा, अपच, कब्ज, बवासीर, गैस आदि बीमारियाँ तो प्रत्यक्षतः अनुचित आहार से पैदा होती हैं। सप्ताह में एक दिन उपवास करना श्रेयस्कर है।

प्रातः उठते ही बिना ब्रश किए एक लीटर पानी पीएँ। यह जल सेवन अनेक रोगों को ठीक करता है।

4. विशिष्ट चिकित्सा

अपने रोग विशेष के विशेषज्ञ डॉक्टर से इलाज कराते हुए उसके निर्देशों के अनुरूप चलें। यानी कैंसर है तो दक्ष विशेषज्ञ के आदेशों के अनुरूप चलें।

रोग विशेष का निदान एलोपैथिक पद्धति से कराकर प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लें। साथ ही कई तरह की वैकल्पिक चिकित्सा भी उपलब्ध हैं। आयुर्वेद, पंचकर्म, एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर, आहार चिकित्सा आदि की मदद लें।

मेडिसिन और मेडिटेशन

औषधि शास्त्र, मेडिसिन आदमी की बीमारियों को ऊपर से पकड़ता है; मेडिटेशन, ध्यान एवं ध्यान का शास्त्र-आदमी को गहराई से पकड़ता है। इसे ऐसा कह सकते हैं कि औषधि मनुष्य को ऊपर से स्वस्थ रखने की चेष्टा करती है, ध्यान मनुष्य को भीतर से स्वस्थ रखने की चेष्टा करता है।

जैसा मैंने कहा, शरीर में बीमारी पैदा हो, तो उसके वाइब्रेशंस, उसकी तरंगें अंतरात्मा तक पहुँच जाती है। अगर अंतरात्मा बीमार हो, तो उसकी तरंगें भी शरीर के छोर तक आती हैं। असल में आदमी का शरीर और आदमी की आत्मा एक ही चीज के दो छोर हैं। अगर ठीक से कहें तो हम यह नहीं कह सकते हैं कि आदमी बॉडी+सोल, आदमी साइकोसोमेटिक है, या सोमेटोसाइकिक है। आदमी मनस-शरीर है या शरीर-मनस है।

मेरी दृष्टि में आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है उसका नाम शरीर है और आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है, उसका नाम आत्मा है। अदृश्य शरीर का नाम आत्मा है, दृश्य आत्मा का नाम शरीर है। ये दो चीजें नहीं हैं, ये दो अस्तित्व नहीं हैं, ये एक ही अस्तित्व की दो विभिन्न तरंग-अवस्थाएँ हैं।

ठीक वैसे ही, आदमी का शरीर और उसकी आत्मा एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। बीमारी दोनों छोरों में किसी भी छोर से शुरु हो सकती है। शरीर के छोर से शुरु हो सकती है और आत्मा के छोर तक पहुँच सकती है। असल में जो भी शरीर पर घटित होता है, उसके वाइब्रेशंस, उसकी तरंगें आत्मा तक सुनी जाती हैं।

दुनिया में हजारों तरह की चिकित्साएँ चलती हैं, हजारों तरह की पैथीज हैं। अगर पैथोलॉजी एक साइंस है, तो हजारों तरह की नहीं हो सकतीं। लेकिन हजारों तरह की हो सकती हैं, क्योंकि आदमी की बीमारियाँ हजारों तरह की

हैं। कुछ बीमारियों को एलोपैथी फायदा पहुँचा ही नहीं सकती। जो बीमारियाँ भीतर से बाहर की तरफ आती हैं, उनके लिए एलोपैथी एकदम बेमानी हो जाती है। जो बीमारियाँ बाहर से भीतर की तरफ आती हैं, उनके लिए एलोपैथी बड़ी सार्थक हो जाती है। जो बीमारियाँ भीतर से बाहर की तरफ जाती हैं, वे बीमारियाँ शारीरिक होती ही नहीं, शरीर पर केवल प्रकट होती हैं। उनके होने का तल सदा ही साइकिक या और गहरे में स्प्रिचुअल होता है, या तो मानसिक होता है या आध्यात्मिक होता है।

एक मत यह भी है कि असल में जो बीमारी चित्त के तल से शुरू होती है और शरीर पर आती है, वह वैज्ञानिक रूप से एलोपैथी द्वारा हल नहीं हो सकती।

"कभी दूसरों से मत कहो कि आप बीमार हैं, न कभी बीमार ही बनो। बीमारी एक ऐसी वस्तु है, जिसे पनपते ही रोकने का प्रयास करना चाहिए।"

—बुलवर लिटन

"बीमार होने पर भी बीमारी के अस्तित्व में विश्वास मत करो। इस प्रकार स्वागत न पाकर बीमारी रूपी अतिथि भाग जाएगा।"

—परमहंस योगानंद

भाग तीन
अर्थ-प्रबंधन

जीवन का लक्ष्य धन कमाना हो गया है। लेकिन धन सबकुछ नहीं है। धन की

अपनी सीमाएँ हैं। बाजार की ताकतें हमको उपभोक्ता समझती है। विज्ञापन के द्वारा हमें फँसाती हैं। सारे गुण व मूल्य धन के अधीन हैं। आज व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं रहा। बाजारवाद ने हमारा मूल्य घटा दिया है। हम मात्र भोक्ता हो चुके हैं। धन की खोज में हमारा जीवन खर्च हो रहा है। हम स्वयं को भूल जाते हैं। प्रेम, स्नेह, मानवता की जगह पैसा ही सबकुछ हो गया है। अर्थ-प्रधान युग में अर्थ की हद को जानना व उसका प्रबंधन करने की कला सीखना जरूरी है। आप अपने से पूछें—क्या पैसा परमेश्वर है?

पैसा जीवन का लक्ष्य नहीं है, बल्कि जीवन को जीने हेतु एक साधन है, व्यावसायिक जीवन को अपने नियंत्रण में रखें व उससे खुशी प्राप्त करें। पारिवारिक जीवन व व्यावसायिक जीवन में तालमेल बिठाने की कला महत्त्वपूर्ण है। अतः धनार्जन में व्यावसायिक जीवन को कैसे सँभालें, इसका गणित भी सुचारु रुप से आना चाहिए।

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री

स्वामी परमानंद—पैसे से परमात्मा की ओर

सर श्री—पैसा रास्ता है, मंजिल नहीं

9

पैसा रास्ता है, मंजिल नहीं

> *"धन आपका दास है, यदि आप उसका उपयोग जानते हैं। वह आपका स्वामी है, यदि आप उसका उपयोग नहीं जानते।"*
>
> *–होरेस*

सोने की ईंट और बूढ़ा

एक बूढ़े व्यक्ति के पास एक सोने की ईंट थी, जिसे उसने लपेटकर बगीचे में गाड़ रखा था। प्रति सप्ताह थोड़ी सी मिट्टी हटाकर उसे देखता रहता था। एक दिन पोते ने देखा कि दादाजी उस जगह को कभी-कभी खोदकर देखते हैं। उसने एक दिन खोदकर सोने की ईंट निकाल ली तथा उसी वजन व आकार का पत्थर रख दिया। दादाजी ने जब देखा तो रोने लगे। पोते ने कहा, आपने आज तक उसका उपयोग किया नहीं, मात्र देखकर रख देते हैं। इसे देखकर रख लो तो क्या फर्क पड़ता है, यह सोने की है या पत्थर की? आपको तो मात्र देखना है।

इसी तरह हम धन जमा कर उसे देखते रहते हैं। वह हमारे किसी काम नहीं आता है और हम अलग हो जाते हैं। एक रुचिकर खबर याद आई। आपने पढ़ा होगा कि मई दो हजार दस के अखबारों में डॉ. देसाई के घर छापा पड़ा, अठारह सौ करोड़ रुपए व डेढ़ टन सोना मिला। वे सज्जन इन पैसों को रोज बूढ़े की तरह देखते ही तो थे।

धन के दीवाने न बनें। इसको बचाने के क्रम में रिश्तेदार न खोएँ। अगर पास में धन है तो जरूरतमंद को दें। हमारा धन कोई खा सकता है, हमारी किस्मत नहीं। अतः धन हेतु माता-पिता व भाई-बहनों से लड़ना अनुचित है।

'प्यासा सावन' एक अच्छी हिंदी फिल्म है, जो धन की सीमाएँ दरशाती है। इसमें नायक-नायिका प्रेम-विवाह रचाते हैं। प्रारंभ में धन नहीं था, प्रेम से रहते थे, बाद में नायक बहुत धन कमा लेता है, लेकिन समय नहीं है। इधर नायिका को कैंसर हो जाता है। तब भी धन का उपयोग नहीं कर पाते हैं।

एक जगह पढ़ा था कि व्यक्ति धन अर्जित करने के क्रम में आधा स्वास्थ्य खो देता है। फिर बाद में स्वस्थ होने में आधा पैसा खर्च करता है। क्या यह अच्छा गणित है?

लक्ष्मी-पूजन का अर्थ किसी कर्मकांड का अंधानुकरण नहीं है। परंपरागत ढंग से मात्र धन की देवी की औपचारिक पूजा करना नहीं है। लक्ष्मी धन की देवी नहीं, बल्कि धन की शक्ति की प्रतीक है। इसका असल अर्थ धन का महत्त्व जानना, कैसे आय बढ़ाना, कैसे बचत करना, कैसे निवेश करना, कैसे उपयोग करना, उसका दास न बनना, उसके पीछे पागल न होना, धन के बाद समृद्धि कैसे पाना आदि है। मात्र धन से जीवन नहीं चलता है, उसका अपना महत्त्व है। लेकिन धन के साथ-साथ समझ, ज्ञान, प्रेम, ध्यान व कला की भी जरूरत है। मित्र भी चाहिए, हमें समाज में अपनी भूमिका भी निभानी जरूरी है। पैसा रास्ता है, मंजिल नहीं। पैसा जीवन चलाने को आवश्यक है, लेकिन सबकुछ नहीं है। पैसा परमात्मा नहीं, हमारे जीवन में सहायक है। पैसा लेन-देन का माध्यम है। पैसे को अपने जीवन में न कम न ज्यादा, बल्कि योग्य स्थान दें। पैसा पैसा है, उसे इस्तेमाल करें और अगली जरूरत आने तक उसे भूल जाएँ। पैसा कमाएँ और पैसे को रास्ता बनाकर मंजिल पाएँ।

मैं दीवाली के दिन लक्ष्मी की औपचारिक रूप से पूजा नहीं करता हूँ, लेकिन धन के प्रति अपनी समझ विकसित करने का प्रयत्न जरूर करता हूँ। मुझे कितना धन चाहिए? इस वर्ष कहाँ निवेश करूँ? अपनी आवश्यकताओं को पहचानता हूँ कि क्या खरीदना है व क्या नहीं खरीदने में मेरा हित है। जरूरत की चीज खरीदनी आवश्यक है, इच्छा के कारण नहीं खरीदता हूँ। इच्छा व जरूरत को पहचानें, दोनों अलग-अलग हैं।

हमारे शास्त्र में जो चार पुरुषार्थ बताए हैं—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इनमें सामंजस्य कैसे स्थापित करना है? इसके लिए मुझे अपने विश्वास कैसे बदलने हैं? कहाँ इनमें कमजोरी है?

हर व्यक्ति की पैसे के प्रति धारणाएँ होती हैं। ये धारणाएँ कई बार अचेतन रूप से हम सीख जाते हैं। दीवाली पर समग्र रूप से विचार करें।

प्रचलित धारणाएँ

पैसा हाथ का मैल है। पैसा ही सफलता का पर्याय है। धन को सब पूजते हैं। धन से इज्जत मिलती है। धन से संबंध बनते हैं। निर्धनता अभिशाप है, पाप है, गुनाह है। धन से ही व्यक्ति का मूल्य है। राजस्थानी कहावत (नाणा (खपमा) बिना नाथिया, नाणा हो तो सेठ नाथूलाल)। बुढ़ापे में पैसा ही रक्षा करता है। अमीर व्यक्ति शोषक होते हैं। अर्थ-उपार्जन पाप है। परिग्रह अच्छा है। पेट भर सकता है, पेटी नहीं।

लक्ष्मी और सत्यनारायण के बीच गहरा संबंध है। अतः लक्ष्मी प्राप्ति के मार्ग में सत्य न छोड़ें। सत्य को छोड़कर कमाया धन सुख नहीं देता है।

"दौलत बुद्धिमान की सेवा करती है और मूर्ख पर शासन।"

—एक कहावत

पैसे के दुश्चक्र को समृद्धि चक्र बनाएँ

धन को ही लक्ष्य न रखकर सच्चे अमीर कैसे बनें—इस पर गहन विचार की जरूरत है। पैसा ही सबकुछ नहीं है। समझ है तो पैसा वरदान है वरना अभिशाप है। पैसा यदि अभिशाप है तो जीवन रोग है। पैसा यदि वरदान है तो जीवन योग है, जब तक पैसा नहीं होता है तो पैसे की कमी ही समस्या है। पैसा अकेले नहीं आता है। वह अपने परिवार के अन्य सदस्यों जैसे कि उसके बढ़ाने का लालच, उसकी रक्षा का संघर्ष, उसको खोने का भय आदि को भी साथ में लाता है।

लक्ष्मी को समझें और पैसे का सही इस्तेमाल करना सीखें। पैसे को हम इस्तेमाल करें, न कि पैसा हमें इस्तेमाल करे। प्रकृति के महान् नियम जानकर न केवल धन-दौलत प्राप्त करें, बल्कि धन के साथ ध्यान, ज्ञान, प्रेम, साहस और स्वास्थ्य की दौलत भी प्राप्त करें। जिसके पास ऊपर दी गई सभी दौलतें हैं, वही सच्चा अमीर है।

इसलिए पैसे को न भगवान् मानें, न शैतान। न उसे फिजूल खर्च करें, न दबाकर रखें। न उससे चिपके रहें, न उससे दूर भागें, बल्कि जागें। पैसा पैसा है, उसे इस्तेमाल करें और अगली जरूरत आने तक उसे भूल जाएँ। पैसा कमाएँ और पैसे को रास्ता बनाकर मंजिल पाएँ। जिस तरह कुरसी इस्तेमाल कर लेने के बाद आप दिन भर कुरसी के बारे में सोचते नहीं रहते। कुरसी की फिर से जरूरत पड़ने पर ही आप कुरसी के बारे में सोचते हैं। इसी तरह पैसे को अपने जीवन में योग्य स्थान दें, न कम, न ज्यादा। पैसा हम इस्तेमाल करें, न कि पैसा हमें इस्तेमाल करे। पैसा साध्य नहीं, साधन है।

जैसे समय नियोजन करने वाले उपलब्ध समय में सारे काम योग्य रीति से कर पाते हैं, वैसे ही उपलब्ध धन के अनुसार जरूरतों को पूरा किया जा सकता है। जरूरतों के लिए भरपूर धन उपलब्ध है, लेकिन लालच के लिए हमेशा कम है, लोभ का कोई अंत नहीं। शुरु-शुरु में आपको यह विधि अपनाने में कुछ अड़चन महसूस होगी, परंतु जल्द ही आप देखेंगे कि यह करना संभव है।

जब पैसे के साथ सत्य जुड़ता है तब पैसा ईश्वरीय उपहार बनता है। आध्यात्मिक मार्ग में लक्ष्मी (पैसे) के बारे में जो भी बताया जा रहा है, उसका अर्थ सिर्फ पैसा नहीं है, बल्कि मूल उद्देश्य (आत्म-साक्षात्कार) का मार्ग है।

पैसा कमाने का सही लक्ष्य तय करें

व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं व इच्छाओं में फर्क कर धन की मात्रा का आकलन करना चाहिए कि आखिर उसे कितना धन चाहिए। व्यक्ति को ध्यान होना चाहिए कि उसे कितने पैसों की जरूरत है। यद्यपि इसकी गणना करना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं है। भगवान् महावीर ने तभी तो अपरिग्रह के व्रत का उपदेश दिया है। सीमा से अधिक संग्रह अनुचित है।

असली दौलत प्राप्त करें

धन की सीमाएँ

पैसे से क्या नहीं मिलता है? पैसे से प्रेम नहीं मिलता, शांति नहीं मिलती, न ही पैसे से मित्रता व असली खुशी मिलती है। धन से आप आत्मीयता नहीं खरीद सकते हैं। किसी ने कहा है कि आत्मदान ही सबसे बड़ा दान है। यह धन के दान से भी महान् है। धन कभी सुख का साधन नहीं बन सकता। धन की सहायता से आत्मीयता नहीं मिलती। हेनरी फोर्ड विश्व के सर्वाधिक धनी व्यक्तियों में से एक थे। उनके अंतिम दिनों में एक पत्रकार ने उनसे पूछा, "आपके पास वे सभी चीजें हैं, जिनकी साधारण लोग कामना करते हैं। क्या कोई ऐसी वस्तु भी है, जो आपको उपलब्ध नहीं है?" फोर्ड ने बड़े दर्द भरे स्वर में उत्तर दिया—"एक बहुत मूल्यवान वस्तु मुझे भी प्राप्त नहीं है, सच्चे मित्र की प्राप्ति से जो सुख मिलता है, वह मुझे नहीं मिला। आज सारा धन और यश उस पर न्योछावर करने को तैयार हूँ, पर...।"

आज लक्ष्मी की पूजा करने के बजाय हम चाहें तो यह प्रण कर सकते हैं कि धन के प्रति हमारा नजरिया ज्यादा सहज, संतुलित और तटस्थता का हो। हम उसके महत्त्व को कम करके नहीं आँकेंगे; लेकिन यह समझेंगे कि आखिरकार जीवन धन के लिए नहीं, बल्कि धन जीवन के लिए है। धन से सबकुछ हासिल नहीं होता। कला-रचनात्मकता, लोगों का सान्निध्य, रिश्ते, प्यार, ये सब धन से कहीं बड़ी और ऊँची चीजें हैं। यह वैराग्य का दर्शन नहीं है। यह जीवन के प्रति वास्तविक मोह और प्रेम का दर्शन है; उसे सही अर्थों में समझने और जीने का दर्शन है।

लक्ष्य तब तक पूरा नहीं होता जब तक आप उसके लिए समय सीमा निर्धारित नहीं करते।

धन से आप किताब खरीद सकते हैं, ज्ञान नहीं। धन से आप मूर्ति खरीद सकते हैं, भक्ति नहीं। धन से आप गहने खरीद सकते हैं, रूप नहीं।

पैसे से माँ-बाप नहीं खरीदे जा सकते हैं। सबसे बड़ा रुपया नहीं, सबसे बड़ा हमारा विवेक है। धन से आप भोजन खरीद सकते हैं, भूख नहीं। धन से आप बढ़िया नरम बिस्तर खरीद सकते हैं, नींद नहीं। धन से आप स्वास्थ्य नहीं, दवाइयाँ खरीद सकते हैं। आप साधन खरीद सकते हैं। उससे मन की शांति नहीं खरीद सकते हैं, परिजनों को आप सुविधा पैसों से दे सकते हैं, बदले में प्यार प्राप्त नहीं कर सकते हैं। बाजार में अपनत्व, शांति, प्यार मोल नहीं मिलते हैं। आप चापलूस व मीठा बोलने वाले पाखंडी मित्र पा सकते हैं, जान देने वाले दोस्त धन द्वारा नहीं बनाए जा सकते हैं। धन से कुछ समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं, लेकिन सारी समस्याओं का हल धन नहीं कर सकता है। सारी समस्याओं का सामना विवेक से करने पर रास्ता मिलता है। समझ द्वारा बुरे दिन भी बेहतर दिन में परिवर्तित हो सकते हैं।

आपने जो भी कमाया है, उसका कितने प्रतिशत स्वयं पर खर्च किया है? प्रतिदिन की कमाई का कितने प्रतिशत आप अपने पर खर्च करते हैं?

एक शोध के अनुसार यदि आप सौ रुपए प्रतिदिन कमाते हैं तो बीस से पच्चीस प्रतिशत अपने पर खर्च करते हैं। यदि आप एक हजार रुपए प्रतिदिन कमाते हैं तो दस से पंद्रह प्रतिशत (एक सौ से एक सौ पचास रुपए) स्वयं पर खर्च करते हैं। लेकिन आप दस हजार रुपए प्रतिदिन कमाते हैं तो चार से सात प्रतिशत (चार सौ से सात सौ) स्वयं पर खर्च करते हैं। आप कितना खर्च करते हैं, गणना कर देख लीजिए।

मेरे पास दो रोटियाँ हों और पास में फूल बिकने आएँ तो मैं एक रोटी बेचकर फूल खरीदना पसंद करूँगा। पेट खाली रखकर भी यदि कला-दृष्टि को सींचने का अवसर हाथ लगता होगा तो मैं उसे गवाऊँगा नहीं।

यह कहानी तो आप जानते हैं कि सुखी आदमी के पास कुरता नहीं था, जिसे बीमार राजा पहनना चाहता था। अर्थात् राजा को लालच की व्यर्थता दिखानी थी।

हम कई बार कीमत के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। सदैव कीमत महत्त्वपूर्ण नहीं है। वस्तु की कीमत माँग-पूर्ति का नियम तय करता है। जबकि वास्तव में

इसका महत्त्व बहुत होता है। इस पर एक कहानी याद आती है। एक राजा एक जंगल में भटक गया। उसे बहुत जोर की प्यास लग रही थी। जंगल में कहीं पानी नहीं था। गरमी के दिन थे। राजा के प्राण सूखने लगे। वह प्यास से बेहाल था। तभी उसे एक झोंपड़ी नजर आई। वह भागता हुआ वहाँ पहुँचा। पानी माँगा और कहने लगा कि जो कीमत चाहो ले लो। मुझे पानी दो। बुढिया ने कहा कि एक लोटा पानी की क्या कीमत दे सकते हो। राजा कीमत बढ़ाते-बढ़ाते आधा राज्य देने को तैयार हो गया। अर्थात् वस्तु मूल्यवान है। धन से सबकुछ नहीं खरीदा जा सकता है। उसका मूल्य सीमित है।

श्री मनीष जैन ने हावर्ड से अर्थशास्त्र एवं शिक्षा में डिग्रियाँ लीं, फिर वालस्ट्रीट एवं संयुक्त राष्ट्र में एक करोड़ रुपए की मासिक नौकरी की। धन की सीमित उपयोगिता जानकर नौकरी छोड़कर आज 'शिक्षांतर' नामक आंदोलन चला रहे हैं और शिक्षा पर नए प्रयोग कर रहे हैं। वे स्वराज विश्वविद्यालय में धन के बिना सार्थक जीवन जीने का प्रयोग कराते हैं। यहाँ कुछ साथी वर्ष में आठ-दस दिन साइकिल यात्रा करते हैं व बिना पैसों के इस दौरान जीते हैं। कोई भी इस साहसिक प्रयोग में शामिल होकर धन की उपयोगिता का अनुभव कर सकता है।

83, आदिनाथ नगर, उदयपुर में 'शिक्षांतर' से संपर्क किया जा सकता है।

मुख्य सार

धन से ही सब काम नहीं होते। धन आपसे बड़ा नहीं है; जीवन सबसे महत्त्वपूर्ण है। आप धन का उपयोग करें, उसे अपना उपयोग न करने दें। अपने कार्य से प्यार खुश रहने की चाबी है।

सच्चे दोस्त, प्यार करने वाले साथी, वफादार नौकर व दिल से चाहने वाले लोग दौलत से भी बड़ा खजाना हैं। ये ही असली कारूँ का खजाना हैं। मुद्रा ही मूल्यवान नहीं है।

10

व्यावसायिक जीवन को खुशहाल कैसे बनाएँ?

"हमें मधुमक्खी की तरह कामकाज को अपना मनोरंजन बना लेना चाहिए।"

–गोल्ड स्मिथ

खुश रहने की चाबी: पेशे से प्यार

व्यवसाय आपके लिए है, आप व्यवसाय के लिए नहीं हैं। धंधा पेट के लिए है, आप धंधे के लिए नहीं हैं। जीवन जीने के लिए मिला है, व्यवसाय में डूबने के लिए नहीं। यह मंत्र जिसकी समझ में आ जाता है, वह व्यावसायिक जीवन का दास न होकर उसका आनंद उठाता है।

अपने कार्य, व्यवसाय, नौकरी से प्रेम कर उसका आनंद उठाएँ। अपने काम की नकारात्मक बातें याद कर घृणा न करें। कई लोग अपने व्यवसाय को अपने अनुरूप न पाकर उसकी शिकायत करते रहते हैं। यह असंतोष उनके जीवन को खोखला करता है व मन को अशांत करता है। इससे वे सदैव नाराज रहते हैं। जबकि वस्तुतः कोई भी व्यवसाय बड़ा या छोटा, अच्छा या बुरा नहीं होता है। यह उसके प्रति हमारी सोच है। व्यवसाय हमारे पेट के लिए होता है, हम व्यवसाय के लिए नहीं बने हैं।

अपने व्यवसाय को सकारात्मक व अच्छा समझ कर हम भी अच्छे बन सकते हैं। हाँ, कुछ व्यवसायों से रिटर्न कम या ज्यादा हो सकता है। व्यवसायों की अपनी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ होती हैं। यदि हम अपने व्यवसाय को स्वीकार कर लें तो कोई कठिनाई नहीं है। अपने काम से प्यार करें। हर व्यवसाय में नामचीन लोग हुए हैं। हर व्यवसाय से लोग आगे बढ़े हैं। दम पेशे में कम, व्यक्ति में अधिक होता है।

कृष्ण के निष्काम कर्म की भावना व्यवसाय के क्षेत्र पर भी लागू होती है। हमें अपने व्यवसाय को कर्तव्य समझकर करना चाहिए। निष्काम का अर्थ लक्ष्य बिना कर्म करना नहीं है। निष्काम का अर्थ फल की आसक्ति नहीं रखते हुए कर्म करने से है।

व्यवसाय चुनने के पहले सारा दिमाग लगा दो। अपने मन-माफिक है या नहीं, समझ लें। एक बार व्यवसाय विशेष को चुन लिया, फिर उसका बुरा पक्ष नहीं देखें। उसका सामना करने के उपाय खोजें। उसमें भी बहुत सारी चुनौतियाँ व अच्छाइयाँ हैं।

हर व्यवसाय में बहुत अवसर हो सकते हैं। व्यवसाय को अपने ढंग से करें। उसमें नई राहे खोजें, अपने व्यवसाय के सफलतम लोगों का अध्ययन कर अपना विश्लेषण करें व अपने कार्य-क्षेत्र के दिग्गजों के संपर्क में रहें।

व्यावसायिक जीवन में प्रसन्न रहने हेतु उसमें सफल होना जरूरी है। इसलिए व्यावसायिक दक्षता हासिल करें। अपने व्यवसाय में निपुण होना, उसकी बारीकी को जानना, उसके हेतु उचित संपर्क व साथ रहना आना चाहिए। प्रोफेशन में लापरवाही नहीं चलती। प्रतिद्वंद्विता का जमाना है। सावधान व सजग रहें, ताकि धोखा न खा जाएँ।

मनुष्य जीवन का अधिकतम समय अपने व्यवसाय के प्रबंधन में चला जाता है। व्यावसायिक जीवन संतुलित व प्रसन्नता देने वाला होना चाहिए। अपने व्यवसाय को भार, मजबूरी या खराब समझेंगे तो कभी भी आप उससे खुशी नहीं पा सकते।

वारेन बफेट विश्व के दूसरे नंबर के सबसे धनाढ्य व्यक्ति शेयर बाजार में निवेश करते हैं, लेकिन उलझते नहीं हैं। निश्चित समय पर पूरी तन्मयता से काम करते हैं। फिर अपनी मौज करते हैं। वे अपने साथ मोबाइल नहीं रखते व घर/टेबल पर कंप्यूटर के आगे नहीं बैठे रहते हैं। इतने जोखिम भरे प्रोफेशन में भी मस्ती से रहते हैं। इसका कारण है कि वे अपने धंधे से दूरी रखने में कुशल हैं। घर पर, बिस्तर पर अपने पेशे को नहीं लाते हैं।

कामकाजी जीवन में रस पैदा करने के उपाय

1. अपने कार्य को पसंद करें

अपने व्यवसाय को पसंद करें, प्यार करें, उसमें रुचि लें। जब हम अपने व्यवसाय से प्यार करेंगे तो कभी भी बोर नहीं होंगे। व्यवसाय में नयापन लाएँ। प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक नरेश त्रेहन बताते हैं कि वे ऑपरेशन थियेटर में सबसे ज्यादा रिलैक्स रहते हैं। जितना कार्य में व्यस्त होते हैं उतनी ही प्रसन्न्ता मिलती है। जिस दिन उनके पास कार्य करने की लंबी सूची नहीं होती है, उस दिन वे अप्रसन्न रहते हैं। अपने पेशे से प्रेम करने पर थकान नहीं लगती है, कार्य करने पर कभी बोर नहीं होंगे।

2. रचनाशील रहें

अपने कार्य में रचनाशील बनें, जीवन में सृजन सुख देता है। अपने कार्य को नई दृष्टि से देखें और नए तरीके से करें। उसमें सृजनशीलता रखें, दोहराव से हम ऊब जाते हैं। उसमें नए प्रयोग करें, नई दिशा तलाशें अपने अंतर्मन की सुने आमिर खान अपनी फिल्म में पूरी तरह डूबकर काम करते हैं; सृजनशील है व नयापन लाते हैं। इसलिए उनकी फिल्में चाहे लगान हो, तारे जमीं पर, गजनी, थ्री इडियट या पीपली लाईव हो—सभी सफल हुईहैं।

3. कुशलता से, पूर्णता से कार्य करें—योगः कर्मसु कौशलम्।

अपने पेशे को स्वीकारें, उसकी अच्छाइयाँ देखें। उस पेशे के दिग्गजों से संपर्क करें, उनको आदर्श बनाएँ व आगे बढ़ें।

बॉस प्रबंधन, अधीनस्थ प्रबंधन, निर्णय कला, क्षमता प्रबंधन, संवाद-संबंध प्रबंधन, कैरियर-कामकाजी जीवन—पेशेवर जीवन आदि को समझें, व्यक्तित्व विकास संबंधी साहित्य पढ़ें, वर्कशॉप में भाग लें। हर तरह से अपनी बुद्धि को धार दें। पेशे में आज प्रतिस्पर्धा है। अतः अपने को नापते रहें व अपनी दक्षता बढ़ाते रहें।

अपने साथियों पर अनावश्यक टिप्पणी कर कड़वाहट न बढ़ाएँ। अब इसका समय बीत चुका है। अपने साथी की दूसरे से तुलना कर स्वयं घायल न हों। आपका साथी अपनी जगह पर अपने तरीके से सही हो सकता है। उससे तुलना कर अपने को आहत करने में समझदारी नहीं है।

4. पेशेवर बनें

अपने व्यावसायिक ज्ञान को निरंतर बढ़ाते रहें। इस हेतु नई पत्रिकाएँ पढ़ें। जब पेशे से प्यार नहीं हो तो उसे घर पर नहीं लाएँ। पेशे में आपकी पहचान पेशेवर कुशलता से ही बनती है। पेशे से जुड़े संगठनों में सक्रिय भागीदारी बनें। राजकपूर कहते थे कि फिल्म निर्माण की प्रक्रिया में आनंद उठाकर फिल्म की कीमत प्राप्त कर ली है। फिल्म के चलने से लाभ हो, वह अतिरिक्त है।

नारायणमूर्ति उम्र के बाद चिपके नहीं रहे। रतन टाटा अपना पद छोड़ रहे हैं।

ध्यान रखें, पेशा सबकुछ नहीं है। आप पेशे के लिए नहीं हैं, पेशा आपके लिए है। पेशे को घर पर न लाएँ। सप्ताह में एक दिन अवकाश मनाएँ। शाम का भोजन परिवार के साथ करें। कोई भी पेशा बुरा नहीं होता है। खुशी ढूँढ़ने की

कला आनी चाहिए। हम आनंद नामक तत्त्व से ही निर्मित हैं। अतः मस्त रहने का प्रयास करें।

यदि मेरे पास वृक्ष को काटने के लिए आठ घंटे हैं तो मैं छह घंटे कुल्हाड़ी की धार को तेज करने में खर्च करूँगा।

अपनी कमजोर कड़ी को पहचानें व तत्क्षण उसे दूर करें।

भाग चार
परिवार-प्रबंधन

जीवन भावना प्रधान है, अंतर्जीवन का थर्मामीटर भावना है। अतः अपने को राजी रखना, प्यार पाना व काम के साथ रहना आना चाहिए। सृष्टि का आधार काम है। हम सब उसी से जनमे हैं। काम में न अंधे बनें न उसके शिकार हों। काम का महत्त्व जानें। योग से ही नहीं भोग से भी समाधि का रास्ता जाता है।

एक परिवार में मोटे तौर पर तीन पीढ़ियाँ रहती हैं। जीवनसाथी के साथ रहना और बच्चों को बड़ा करने का विज्ञान समझना जरूरी है। बच्चों को पालने की कला, उनका मनोविज्ञान समझना व उनको विकसित करना हमारे जिम्मे है। साथ ही बुजुर्गों के साथ व्यवहार करने की कला भी महत्त्वपूर्ण है। माता-पिता और अपने बुजुर्गों को सम्मान देकर उनकी परिचर्या करना भी परिवार-प्रबंधन का अंग है।

घर में शांति हो तो जीवन सार्थक है। हमें सुरक्षा, अपनत्व, सहारा, भोजन, संरक्षण, आदि सारे सुख घर में ही मिलते हैं। तभी तो हर आदमी घर जाने को लालायित रहता है। त्योहार, जन्म-दिन, शादी सब परिजनों के बीच ही खुशी देते है। जीवन का पाठ व्यक्ति परिवार से ही पढ़ता है। मानव शिशु अकेला बड़ा नहीं हो सकता है। उसे बड़ा करने हेतु परिवार चाहिए। बढ़ते स्वार्थ ने एकल परिवार को जन्म दिया। 'लिव टुगेदर' की मनोवृत्ति भी आधुनिक समय का अभिशाप है। अहंकार व भोग ने आज परिजनों के बीच सीमाएँ खींच दी हैं। ऐसे में साथ रहने की कला आना जरूरी है।

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री

- आचार्य महाप्रज्ञ/ए.पी.जे. अब्दुल कलाम—सुखी परिवार-समृद्ध राष्ट्र।
- डेल कारनेगी—लोक व्यवहार।
- स्वामी सत्यानंद सरस्वती-बच्चों के लिए योग शिक्षा।
- जान ग्रे—मेन आर फ्रॉम मार्स, विमेन आर फ्रॉम वीनस।

11

जीवन-साथी के साथ कैसे रहें

"जब पुरुष और महिला अपनी भिन्नता को समझ लेते हैं, उनका सम्मान करते हैं तो प्रेम का गुलाब उनके आँगन में हमेशा के लिए खिल उठता है।"

—जॉन ग्रे

पति-पत्नी में सामंजस्य

विवाह के साथ पवित्रता एवं संस्कार का नाम इसकी मजबूती के लिए जोड़ा गया है। वस्तुतः विवाह एक समझौता है। दोनों पक्षकार अपने-अपने प्रयोजन हेतु विवाह करते हैं। अतः दोनों के बीच समर्पण का भाव नहीं होता, भले उसका दिखावा करें। अतः टकराहट स्वाभाविक है। इसे कम करने पर जीवन आराम से गुजर सकता है। विवाह को आदर्श न मानकर समझौता मान लें तो अनेक समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। जब मैं अपने मतलब से प्रेम करता हूँ तो उसकी कमजोरियों व कमियों को नजरअंदाज करूँ—यह भाव दोनों में सामंजस्य पैदा करता है।

हमारा जन्म काम-क्रिया से हुआ है। हम अपनी निर्माण प्रक्रिया की अनदेखी नहीं कर सकते हैं। यह सृजन का उत्स है। इसे भूलाना स्वयं से भागना है। प्रत्येक का अपना विपरीत लिंग का जीवन-साथी होता है। इनमें परस्पर रस व प्रेम होता है। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे होते हैं। दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक होते हैं। एक का अकेले जीवनयापन संभव नहीं है। इस जैविक सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता है। अतः स्त्री-पुरुष की एक-दूसरे में रुचि स्वाभाविक सहज है। इसे नकारना अप्राकृतिक है। इन संबंधों का समाजीकरण विवाह के रूप में होता है। अतः इसकी पवित्रता को बनाए रखने में प्रबंधन सहायक है।

जैविक रूप से दो बदन दो मिनट मिलकर प्रजाति को जीवित रख सकते हैं, तो दो मन मिलकर अपना जीवन स्वर्गमय क्यों नहीं बना सकते हैं? दो मन मिल क्यों नहीं सकते हैं? दो आत्माएँ एक क्यों नहीं हो पाती हैं? अपने साथी को स्वीकार करें, जैसा भी हो व उसे समस्या न बनाएँ दांपत्य में सफलता का सबसे बड़ा सूत्र यही है।

हालाँकि सभी इस बात पर सहमत हैं कि पुरुषों और महिलाओं में भिन्नता होती है, परंतु वे कितने भिन्न होते हैं, यह ज्यादातर लोग नहीं जान पाते। पुरुष और महिलाएँ न सिर्फ अलग हैं, वे अलग तरीकों से बोलते हैं, वे अलग-अलग तरीकों से सोचते, महसूस करते, देखते, प्रतिक्रिया करते, प्रेम करते, तारीफ करते हैं। ऐसा लगता है जैसे वे अलग-अलग ग्रहों से आए हैं, उनकी भाषाएँ अलग हैं और उन्हें अलग-अलग चीजों की जरूरत होती है।

जॉन ग्रे ने पच्चीस हजार लोगों के सर्वे के बाद यह खोज की कि महिला और पुरुष कितने और किस तरह भिन्न होते हैं। जिसका वर्णन उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मेन आर फ्रॉम मार्स एंड विमेन आर फ्रॉम विनेस' में किया है।

श्रीमान 'समस्या सुलझाने वाले' और श्रीमती 'घर-सुधार समिति'

महिलाओं को सबसे ज्यादा शिकायत इस बात से होती है कि आदमी उनकी बात ठीक से सुनते ही नहीं हैं। जब भी पत्नी बोलती है तो या तो पति उसे पूरी तरह नजर-अंदाज कर देता है या फिर वह कुछ देर ही सुनता है। इस बात का अंदाज लगाता है कि पत्नी की परेशानी क्या है और फिर गर्व से अपनी समस्या सुलझाने वाली टोपी लगा लेता है और उसे उस समस्या का हल बता देता है। जब उसकी सलाह का महत्त्व नहीं मिलता, तो वह दुविधा में पड़ जाता है। पत्नी चाहती है हमदर्दी; जबकि पति को लगता है कि वह अपनी समस्या का समाधान चाहती है।

जब पुरुष कोई गलती करता है, तो महिला तत्काल 'घर-सुधार समिति' बनकर उसके व्यवहार को बदलने की कोशिश करती है और बिना माँगी सलाह देती है या उसकी आलोचना करती है।

दुनिया में हर साल करोड़ों लोग प्यार करते हैं, शादी करते हैं और तलाक लेते हैं, क्योंकि उनका प्यार कहीं गुम हो गया है। ऐसा अनुमान है कि जो लोग शादी करते हैं, उनमें से लगभग कुछ लोगों का तलाक हो जाता है और जो बाकी बचते हैं, उनमें से भी अस्सी प्रतिशत प्रेम के कारण इकट्ठे नहीं रहते, बल्कि वफादारी, सामाजिक प्रतिष्ठा या एक बार फिर से शुरु करने के डर के कारण साथ-साथ रहते हैं।

बहस का ग्राफ

बहस में पुरुष कभी नहीं कहते, आई.एम. सॉरी, क्योंकि उनके शब्दकोश में इस वाक्य को कहने का अर्थ है कि आपसे कोई गलती हुई है और आप उसके लिए

माफी माँग रहे हैं। महिलाओं के अनुसार आई एम सॉरी का अर्थ है मुझे आपकी भावनाओं की परवाह है। पुरुषों को चाहिए कि वे महिलाओं की भाषा के इस पहलू को सीख लें, क्योंकि इस छोटे से वाक्य से उनके जीवन में बड़ी-बड़ी खुशियाँ आ सकती हैं।

पति-पत्नी के हित साझा होते हैं

पति-पत्नी के बीच जैविक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अन्य कई तरह के संबंध होते हैं। भवसागर को पार करने के लिए दोनों की नाव एक होती है। अतः उनमें परस्पर निर्भरता स्वाभाविक है।

जैसाकि हम सब जानते हैं, एकल परिवार के जमाने में बुढ़ापे में दोनों ही एक-दूसरे का सहारा होते हैं। सफल बच्चे एवं असफल बच्चे दोनों ही बुढ़ापे में आजकल माता-पिता की देखभाल नहीं कर पाते हैं। अतः परस्पर सहारा बनें। इस हेतु पति-पत्नी के बीच परस्पर समझ व सहयोग जरूरी है।

पति-पत्नी के बीच स्वस्थ यौन संबंध होना जरूरी है। इन संबंधों की बुनियाद का आधार भी यही है। इनमें अगर अधूरापन है, तो पति-पत्नी कभी भी सफल दंपती नहीं हो सकते हैं। अतः इनकी बारीकी, गहराई को जानना, परस्पर संतुष्ट करना अनिवार्य है। अन्यथा दंपती लड़ते रहते हैं, एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए।

काम-संबंध की मजबूती से अन्य छोटे-मोटे विवाद तूल नहीं पकड़ते हैं। स्वस्थ काम-संबंध के अभाव में छोटे-मोटे विवाद विकराल रूप ले सकते हैं। अतः इन भावनात्मक व जैविक संबंधों की अनदेखी न करें, इन्हें मामूली व हेय न समझें। यौन संबंध एकतरफा नहीं होने चाहिए। इनमें दूसरे पक्षकार को महत्त्व व संतोष मिलना चाहिए।

पति ध्यान रखें

- पत्नी को पैर की जूती न समझें। अर्थात् उसकी उपेक्षा न करें। इसे बाई न समझें, वह जीवनसंगिनी है।
- अनावश्यक मर्दानगी न दिखाएँ। पुरुष अहंकार से बचें।
- समागम आपका अधिकार नहीं, परस्पर जरूरत है। इस वक्त पत्नी की मनःस्थिति को समझें, उसे तैयार करें, फिर आगे बढ़ें। उसके साथ जोर-जबरदस्ती नहीं करें।
- पत्नी के पीहर पक्ष का मजाक न बनाएँ। उसका भावनात्मक सम्मान कायम रखें। उसे अनावश्यक चिढ़ाएँ नहीं।

- अपनी सीधी-सादी पत्नी को अहसास करा दें कि उसके पास बिपाशा बसु जैसा गरम जिस्म है, तो वह आप पर मर मिटेगी।

पत्नी ध्यान रखें

- अपने पति को 'ये तो ऐसे ही हैं, कहते रहते हैं' कहकर पति की अनदेखी न करें।
- अपने पति को परमात्मा न मानें, तो बेवकूफ या पागल भी न मानें। पति प्यार में आपसे बच्चे जैसे व्यवहार करते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे कुछ नहीं समझते हैं।
- पति के परिजनों को अपना समझें। उन्हें बेगाना न समझें। उनकी उपेक्षा न करें।
- जो औरतें पति को बिस्तर में खुश करना जानती हैं, वही अपनी मरजी चला पाती हैं। लेकिन इसका मतलब सोची-समझी चालाकी करना नहीं। इसे हथियार न बनाएँ।
- पति को कैरियर में परेशानी के समय अपनेपन की जरूरत होती है, वही औरत, जो पति का साथ दे, वह न केवल अपना बिना शर्त का प्रेम और वफादारी, बल्कि अपने चरित्र की शक्ति भी दिखाती है।
- अगर पुरुष में स्वाभिमान की कमी है, तो उसे पहचाने और घर में उसे चैंपियन होने का अहसास कराएँ, वह जिंदगी भर आपको चाहेगा और हर माँग को पूरी करेगा।

दोनों ध्यान रखें

- सामने वाला (पति या पत्नी) जीवनसाथी है, उसकी अपनी सोच है, धारणाएँ हैं, अच्छाइयाँ-बुराइयाँ हैं। उसे आप पूरा स्वीकारें। उसमें अनावश्यक मीन-मेख न निकालें।
- दूसरे को सुधारने के नाम पर सतत संघर्ष न करें। अपने जीवनसाथी को बदलने के नाम पर तंग न करें।
- जीवनसाथी को अनावश्यक टीका-टिप्पणी कर आहत न करें।
- परस्पर अपनत्व दें व आत्मीयता पाएँ। शादी उन लोगों के लिए है, जिन्हें इसमें विश्वास है, जो इसे सक्रियता से चाहते हैं, जो इसका आनंद उठाते हैं।
- स्पर्श विश्वास है। सिर्फ वही जो आपको चाहते हैं और जिन्हें आप चाहते हैं, प्यार से हाथ बढ़ाकर बिना कहे जज्बात व्यक्त कर सकते हैं। स्पर्श को स्वीकार करें और उसका जवाब दें।

- 'जरूरतें' दोनों तरफ से होती हैं। हमेशा जरूरतें आपके हिस्से में नहीं हो सकतीं। हर 'इच्छा' के साथ 'देना' भी जुड़ा होता है।

नई पीढ़ी के लिए संदेश—पारंपरिक शादियों के सफल होने की भी उतनी ही संभावना है जितनी कि प्रेम-विवाहों की। पारंपरिक विवाह का चुनाव करने में शरमाएँ नहीं।

दो बदन, एक जान

पति-पत्नी दोनों अलग-अलग संस्कारों व अलग-अलग आनुवंशिकी लिये हुए होते हैं। दोनों की अपनी-अपनी सोच होती है। विवेक, मूल्य व धारणाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः दोनों अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं। इसलिए जॉन ग्रे ने पुरुष को मंगल ग्रह से आया एवं स्त्री को शुक्र ग्रह से आई बताया है। उनके अनुसार मंगल और शुक्र ग्रह की भाषाओं में शब्द एक से थे, परंतु उनके अर्थ अलग-अलग होते हैं। उनके शब्दों में पिरोई बात का अर्थ अलग-अलग होता है। ऐसे में एक-दूसरे की बात का गलत मतलब निकालना बहुत आसान होता है। समझदार स्त्री-पुरुष के सामने जब भी संवाद की समस्या आती है, तो वे अनुमान लगा लेते हैं कि शायद वे एक-दूसरे की बात ठीक से नहीं समझ पाए हैं और इसी वजह से उनके बीच गलतफहमी पैदा हो रही है।

पुरुष की प्रकृति रबर-बैंड की तरह होती है। जब वे दूर जाते हैं तो रबर बैंड की तरह उनके दूर जाने की एक सीमा होती है। वे अपने आपको जितना दूर खींच सकते हैं, उतना खींच लेते हैं और फिर तेजी से अपनी पुरानी अवस्था में दूसरे के पास लौट आते हैं। पुरुषों की अंतरंगता के चक्र को समझने के लिए रबर-बैंड की तुलना आदर्श है। यह चक्र है करीब आना, दूर जाना, फिर दुबारा करीब आना।

महिला की प्रकृति लहरों की तरह होती है। उसका मन लहरों की तरह कभी ऊपर और कभी नीचे होता है। मेरी धर्मपत्नी मीना कहती है कि नीचे जाने का यह अनुभव किसी अँधेरे कुएँ में जाने जैसा होता है। जब कोई महिला अपने कुएँ में उतरती है, तो वह अपने अवचेतन की गहराइयों में ली जाती है। ऐसे समय में उसे निराशा, अकेलेपन और दुविधा का अनुभव होता है। परंतु एक बार वह कुएँ की तलहटी को छू लेती है तो फिर वह अपने आप ऊपर आने लगती है और एक बार फिर से उसका मन ठीक हो जाता है।

पति-पत्नी जीवन भर साथ रहते हैं, लेकिन दोनों एक नहीं हो सकते हैं। क्योंकि अपने-अपने अहंकार एवं माइंड सेट होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनमें

प्रेम नहीं होता, त्याग की भावना, अपनत्व नहीं होता—ऐसा नहीं है। उनमें बहुत अच्छे संबंध व समझ होती है। लेकिन किसी समय किसी बिंदु पर मतभेद भी अनिवार्य रूप से हो जाते हैं। इनमें कुछ बुराई नहीं है, असहज नहीं है। जीवन की यही सच्चाई है। इसे स्वीकार लें तो पति-पत्नी बहुत अच्छे मित्र भी हो सकते हैं। 'परफेक्ट विवाह' या 'परफेक्ट जीवन-साथी' जैसी कोई चीज नहीं होती। इस चक्कर में उलझना ठीक नहीं है। सुखी विवाह का कोई फॉर्मूला नहीं है और न ही किसी के पास सारे जवाब हैं।

एक-दूसरे की अलग-अलग आदतों को समझने के कारण एक समय पुरुष और महिलाएँ सुख से रह पाए, और अगर वे अपनी भिन्नताओं को समझ लें, तो वे आज भी सुख से रह सकते हैं।

व्यक्तिगत तौर पर पति-पत्नी के रिश्ते में ही मुझे सामाजिक परंपराओं को ढोने की बदबू आती है। पति-पत्नी दोनों में कर्तव्य व अधिकारों का बँटवारा समानता पर आधारित नहीं है। अतः मुझे इस जगह मित्रता का संबंध ज्यादा सार्थक नजर आता है। मित्रवत् रहने पर जीवन में आनंद की वृद्धि होती है। मित्र मानने पर सारी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं। तभी उनमें बराबरी व अपनापन पनपता है। पति-पत्नी दोस्त हैं, दुश्मन नहीं। दोनों की सोच अलग होने के कारण हमारी संस्कृति, परंपरा, धर्म एवं सामाजिक मूल्यों में अंतर है। अर्थात् कहा जा सकता है कि पुरुष मंगल ग्रह से आए हैं और महिलाएँ शुक्र ग्रह से आई हैं।

12

कैसे जीतें काम-वासना को

> *"बड़प्पन, पांडित्य, कुलीनता और विवेक मनुष्य में उसी समय तक रहते हैं जब तक शरीर में काम-वासना प्रज्वलित नहीं होती।"*
>
> *–भृर्तहरि*

एक शोध के अनुसार अठहत्तर प्रतिशत काम को जीतने का प्रश्न काम को समस्या

मानने से उत्पन्न होता हैं, अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या काम एक समस्या है? वास्तव में समस्या काम की नहीं, काम की अभिव्यक्ति के बढ़ने की है। निरंतर विचार कर हमने काम को एक समस्या बना दिया है; अर्थात् समस्या काम के संबंध में हमारे विचारों की है। कामुकता से बचने की आवश्यकता है। काम नैसर्गिक आवेग है, संभवतः उससे बचना अप्राकृतिक होगा।

समाज में जिन कारणों से कामुकता बढ़ी है, उन्हीं कारणों में कामुकता से बचने के उपाय छिपे हैं। कामुकता से बचने तथा उसके कारणों का विश्लेषण कर, यथार्थ से अवगत होने की आवश्यकता है। एक प्राकृतिक आवेग आज जटिल मनोग्रंथि क्यों बन गया—इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझे बिना काम की समस्या को सुलझाया नहीं जा सकता।

वैसे मानव ने विकास के प्रारंभिक चरण से ही धर्म की खोज के साथ काम को जीतने की तलाश प्रारंभ कर दी थी; परिणामस्वरूप काम-विजय के अनेक मार्ग कालांतर में विकसित हुए।

काम को जीतने के उपाय

1. धार्मिक मार्ग

यह क्रमिक अभ्यास का पथ है। यह संकल्प द्वारा धीरे-धीरे काम को जीतना बताता है। यह काम से मुक्ति के परंपरागत मार्गों में से प्रमुख मार्ग है। क्रमिक अभ्यास द्वारा इसे वश में करना। सभी भारतीय धर्मों ने इसी मार्ग को प्राथमिकता दी है। प्रथमतः वेश्या-गमन एवं परस्त्री-सेवन न करने का संकल्प लेना, फिर निश्चित समय के लिए अपनी पत्नी से भी भोग-निषेध।

बाह्य रूप में मात्र प्रतिज्ञा कर आज काम को नहीं जीता जा सकता है। मन में संकल्प लेने से चाह समाप्त नहीं हो जाती है। काम के आवेग को जबरन दबाने से वह कुंठा के रूप में प्रकट होता है। इस तरह अचेतन मन में दबी वासनाएँ तिरछे हो कर प्रकट होती हैं। सीधी माँगें रूपांतरित होकर तिरछी हो जाती हैं, जो कि भयंकर हैं। संस्कारों को मिटाए बिना काम को पूर्ण रूप से जीतना संभव नहीं है। यह मार्ग आज उपयोगी नहीं है।

2. पश्चिम का उन्मुक्त यौन मार्ग

काम को जीतने के लिए पश्चिम में उन्मुक्त यौन मार्ग को खोजा गया। इस मार्ग में काम पर कोई अनुशासन नहीं है। इसमें किसी के भी साथ भोग को अशोभनीय नहीं माना जाता। समाज के काम पर किसी प्रकार के बंधन नहीं होते हैं। हिप्पीवाद की असफलता से उन्मुक्तता की व्यर्थता प्रमाणित है। जिस तरह अत्यधिक और पसंद का भोजन करने से भविष्य की भूख नहीं मिटती; उसी तरह उन्मुक्त भोग से काम को नहीं जीता जा सकता। अनियंत्रित काम भोग की इच्छा को बढ़ाता है। इस तरह स्पष्ट है कि उन्मुक्त यौन मार्ग भी काम को जीतने में सहायक नहीं है।

3. संभोग से समाधि-तंत्र मार्ग

काम को जीतने की प्रयत्नशृंखला में तंत्र-मार्ग विकसित हुआ। तंत्र-मार्ग काम का कर्मकांडीय क्रियाओं में खूब खुलकर समर्थन करता है। इसमें काम को विकृत रूप में भी भोगने की छूट है। यह मार्ग समाज एवं मानवता विरोधी है। अतिभोग कभी भी मुक्ति की ओर नहीं ले जा सकता। कोई भी विकृति सत्य-ज्ञान में बाधक होती है। अतिभोग से मात्र ग्लानि पैदा हो सकती है, कामेच्छा समाप्त नहीं हो सकती। ग्लानि चाह की विरोधी है। यह पेंडुलम को एक छोर से दूसरे छोर पर ले जाना है। दोनों अतियाँ घातक हैं, आवश्यकता दोनों अतियों से बचने की है।

ओशो द्वारा प्रतिपादित 'संभोग से समाधि' का सिद्धांत उतना ही गलत है, जितना कि दमन से आत्मसिद्धि का सिद्धांत। विलासिता भोग है। भोग-मार्ग उपादेय नहीं हो सकता; क्योंकि बिना मूर्च्छा के भोग किया ही नहीं जा सकता है। मूर्च्छा-रहित, पूर्ण, जाग्रत् अवस्था में काम-क्रीड़ा उपादेय तो हो सकती है; लेकिन जाग्रत् चेतना-संपन्न व्यक्ति काम के कर्दम में फँस नहीं सकता। भोग के लिए भोगानुकूल संस्कारों की आवश्यकता होती है। सामान्यतः हम पूर्ण काम

को प्राप्त नहीं होते। चूँकि हमारी चेतना खंडित होती है, इसलिए काम में से होकर राम की यात्रा संभव नहीं है।

4. सृजन में लगे रहो

काम ऊर्जा का रूपांतरण सृजन में करें, व्यस्त रहें। अनावश्यक विचार न करें। फुरसत के क्षण में वासना सिर उठाती है।

काम को जीतने के लिए काम-ऊर्जा को रूपांतरित करने की भी संभावनाएँ हैं। कामुकता से बचने के लिए उसकी जगह अच्छे विचारों को प्रत्यारोपित किया जा सकता है। दूसरे विचारों के प्रतिरोपण से काम-ऊर्जा का सकारात्मक उपयोग हो सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी पत्नी के उलाहने पर ही अपनी आसक्ति को परमात्म-प्रेम में रूपांतरित कर 'रामचरितमानस' की रचना की थी। अनेक कलाकार, चित्रकार, मूर्तिकार, साहित्यकार इसी तरह अपनी ऊर्जा का रूपांतरण कर जीवन में सफल हुए हैं। काम का उदात्तीकरण अनेक दिशाओं में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। काम का यह सर्वश्रेष्ठ उपयोग है।

विचारणीय तथ्य यह है कि काम का विचारों द्वारा समूल रूप से रूपांतरण तो संभव है; लेकिन उसे विचारों द्वारा पूर्णतः जीतना असंभव है। अर्थात् मन की ऊर्जा द्वारा मन को नहीं जीता जा सकता है। विचार भी चेतना पर बोझ है। विचार चेतना को समग्रता में स्वतंत्र नहीं होने देते हैं। विचार के कारण ही चेतना स्मृति, काल बोझ में बँटती है। विभक्त चेतना स्वयं को पूर्णता में नहीं जान पाती है। विघटित मन समग्रता का अनुभव नहीं होने देता है, फलस्वरूप हम कभी भी स्वयं से परिचित नहीं हो पाते हैं; और जब तक स्वयं को समग्रता में नहीं जानते तब तक मनोविकारों से मुक्त नहीं हो सकते हैं।

पूर्ण काम के अनुभव से ही काम से मुक्ति मिल सकती है। काम कोई प्रक्रिया नहीं है। यह एक शब्द है। किसी भी तत्त्व को समझने-समझाने में शब्दों की शक्ति सीमित होती है। हम काम को शब्दों, विचारों और सिद्धांतों की सहायता से नहीं समझ सकते; जैसे आत्मा अनुभव की वस्तु है, वैसे ही काम भी अनुभव का विषय है। पूर्ण को उसके स्व-स्वरूप में अनुभव किए बिना अकाम की यात्रा प्रारंभ नहीं हो सकती। काम ही नहीं, किसी भी घटना का पूर्ण अनुभव करने पर ही हम उससे मुक्त हो सकते हैं।

श्रीमद् राजचंद्र ने सिगरेट पीते प्रश्नकर्ता को मुक्ति का पथ यही बताया कि बस ऐसे ही पीते रहो; अर्थात् सिगरेट को पूर्णता में पीओ। सब तरफ से जाग्रत्

होओ। अपनी समस्त इच्छाओं, विचारों एवं स्मृतियों को भूल जाओ। स्व, स्थान एवं काल को भी भूल जाओ। समस्त से, सृष्टि से आत्मसात् हो जाओ। आत्मसात् होते ही जैसे आप पूर्णता को प्राप्त होंगे, वैसे ही आपका दुःख विसर्जित हो जाएगा। जीवन का आनंद स्वतः प्रकट होगा; मुक्ति उससे भिन्न कुछ नहीं है।

मन को समझने पर ही उसे जीता जा सकता है। मन ने काम को एक जटिल ग्रंथि बना दिया है, अतः इस ग्रंथि को सुलझाने का दायित्व भी मन का ही है। मन से मुक्त हुए बगैर काम-विकार से पिंड नहीं छुड़ाया जा सकता। परम सुख की प्राप्ति का भी मार्ग मन पर विजय ही है। जीवन की जटिलता का निराकरण मन की सम्यक् प्रक्रिया का समग्रता में अवधान है। काम के संबंध में निरंतर विचार करने से उत्पन्न समस्या विचार को समझने से ही संभव है। विचार की प्रक्रिया और उसकी संरचना को पूर्णता में समझने की आवश्यकता है।

मन में उत्पन्न अंतर्विरोध, अहं, भय, ईर्ष्या, लोभ, काम, निर्भरता आदि को तभी समझा जा सकता है, जब हम नित्य प्रति के अस्तित्व की समस्त प्रक्रिया को पूर्णतया बिना विचार एवं सूत्र को समझें। विचार, स्मृति, काल और स्थान के बोध रहित स्वयं की चेतना का अनुभव हम पूर्ण ऊर्जा में डूब कर करें। मन से मुक्ति का यही उचित मार्ग है। जब विचार-क्रिया का अंत हो जाता है, तभी सर्जन संभव होता है। यही सर्जन प्रेम है। बँधा हुआ मन प्रेम का निषेध करता है और प्रेम के अभाव में ब्रह्मचर्य नहीं सधता। हमारे जीवन में प्रेम का अभाव है; इसीलिए काम-वृत्ति को हमने समस्या बना रखा है। मन से मुक्त होते ही व्यक्ति स्वयं, स्वतः ही, काम से मुक्त हो जाता है।

न फ्रायड सत्य है न उपनिषद्कार। जिस प्रक्रिया से हम उत्पन्न होते हैं, उससे हम बच नहीं सकते हैं। उसके अस्तित्व को हम स्वीकार कर ही आगे बढ़ सकते हैं। धर्म ने काम को मारने की कोशिश की, लेकिन काम मरा नहीं, बल्कि वह कामुकता बनकर, जहरीला होकर जीवित है।

काम पाप नहीं है। यह जीवन का आधार है, प्राकृतिक है। इसका दुरुपयोग पाप है। कामुकता पाप है।

न भोग, न दमन वरन् जागरण

व्यक्ति अनेक तरह से मानसिक कारागृह में बंद है, काम का विचार करते हुए राम तक नहीं पहुँचा सकता है। वे लोग, जिनके हाथों में जंजीरें हैं, उतने बड़े गुलाम नहीं हैं, जितने वे लोग, जिनकी आत्मा पर विचारों की जंजीरें हैं। जिन्हें काम

विजय करना है, भीड़ की खूँटी से मुक्त हो जाएँ। भीड़ के प्रति जागना है कि मैं जो कर रहा हूँ, वह भीड़ को देखकर तो नहीं कर रहा हूँ।

गुलामी को तोड़ने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। जागते ही गुलामी टूटनी शुरु हो जाती है, क्योंकि यह गुलामी लोहे की जंजीरों की नहीं है, जिनको तोड़ने के लिए हथौड़े और आग जलानी पड़ेगी, ये जंजीरें कुछ बाहर की नहीं हैं। ये जंजीरें सोए होने की जंजीरें हैं। हमने कभी होश से देखा ही नहीं कि हमारी मनोदशा क्या है। इसलिए हम चलते रहे अँधेरे में। जाग जाएँगे तो पता चलेगा कि यह तो हमने अपने हाथ से पागलपन कर रखा है। कोई दूसरा इसमें सहभागी नहीं है। हम खुद ही जिम्मेवार हैं। हम तोड़ सकते हैं, जैसे ही हमें होश आ जाए।

जागरण सिद्धांतों, शास्त्रों, संप्रदायों के प्रति, हिंदू होने के प्रति, भारतीय होने के प्रति, चीनी होने के प्रति ये सारी सीमाओं के प्रति बंधन, इसके प्रति बोध के प्रति जागरण। यह कंडीशनिंग जो भीतर है, इसे देखना है कि यह क्या है। यह मैं क्यों बँधा हूँ इससे। इन्हें छोड़ देना है। छोड़ते ही एक फ्रीडम, एक मुक्ति, एक चित्त की मोक्ष की अवस्था उपलब्ध होती है।

13

स्वीकारने एवं स्वयं को प्रेम करने का विज्ञान

"सभी तरह के प्रेम का जनक स्वयं से प्यार करना है।"

—पीयरे कॉर्नेल

"मैं तो हालात जैसे होते हैं, स्वीकार करता हूँ। दुनिया को तो मैं नहीं चलाता, इसे इसको रचनेवाला चलाता है और इसके कुछ अकाट्य नियम हैं। परिणाम इन्हीं नियमों के अनुरूप होते हैं। परिणाम पाने के लिए व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य भर कोशिश करनी चाहिए।"

—मोरारजी देसाई

जीवन में किसी चीज को पाने का प्रयास करने पर भी वह न मिले, तब जो मिले उसे स्वीकारने में ही सार है। अपने जीवन को सुचारु रुप से प्रबंधन करने में स्वीकार का बहुत महत्त्व है। स्वीकारने के कई आयाम हैं। स्वीकारते ही हम वर्तमान में आ जाते हैं। भूत एवं भविष्य में उलझने से बच जाते हैं।

प्रथमतः स्वीकारने से शिकायत-भाव चला जाता है। अस्वीकार का भाव नकारात्मक है, वह हमें बेचैन करता है। जब हममें किसी के प्रति अस्वीकार न होगा तो शिकायत स्वतः ही नहीं उठेगी। ऐसे में हमारी ढेर सारी ऊर्जा बच जाएगी। संसार में हमें भौतिक रूप से इतनी तकलीफ नहीं होती है, जितनी हमें अपने को अस्वीकारने से होती है। हम जब अपने से राजी नहीं होते हैं तो कुछ भी अच्छा नजर नहीं आता है। हमारे अधिकांश दु:ख मानसिक हैं। चीजों की उपलब्धता में कमी नहीं हैं, हमारी भूख बड़ी है। कुछ लोग गलतियाँ खोजने में माहिर होते हैं। गलतियाँ खोजकर तृप्त होते हैं। हम जैसे हैं वैसे स्वीकारने में आत्म-सम्मान है। स्वयं को प्यार करना है। अपने से सहमत होना बड़ी बात है।

जीवन में जो मिला है, वह ईश्वर की कृपा है। हमारा किसी पर दावा नहीं है। स्वीकार भाव ही जीवन में सुख-शांति लाता है। उपलब्ध का आनंद लेना हम नहीं जानते हैं। जिस-जिस ने जितना-जितना मंजूर किया है, वह उतना ही सुखी है। अस्वीकारना नकारात्मक है। परमात्मा ने अपनी आवश्यकतानुसार हर जीव को बहुत दिया है। हमारा लालच कभी खत्म नहीं होता है। वास्तव में समस्या आवश्यकता की नहीं, लालच की है।

स्वीकारने से हम आस्तिक हो जाते हैं। इससे हम में प्राप्त के प्रति अहोभाव उठता है व उपलब्ध का आनंद आता है। इसी भाव को धार्मिक लोग 'ईश्वरेच्छा-

प्रबल' कहते हैं। इससे अपने से उच्चशक्ति के प्रति श्रद्धा आती है, जो हमें शांत व सकारात्मक बनाती है। इसी से भक्ति भाव का जन्म होता है। प्राप्त के प्रति समर्पण का भाव जगता है। कर्म सिद्धांत को मानने वाले भी 'मेरे भाग्य में यही लिखा था' मानकर संतुष्ट होते हैं। उपलब्ध को पूरी तरह मान लेने पर हम विचार करना कम करके निर्विचार की दिशा में बढ़ते हैं।

यथास्थिति को स्वीकारने से हम वर्तमान में आ जाते हैं। व्यक्ति का अतीत के प्रति असंतोष व भविष्य के प्रति इच्छा मिट जाती है। इससे हम अभी और यहीं में जीने लगते हैं। यह स्वीकार-भाव का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम है।

गीता में जिसको 'निष्काम-कर्म' कहा गया है, वह भी स्वीकार भाव का ही एक और आयाम है। उपलब्ध को अपनाते हुए बिना फल की आकांक्षा के बिना कर्म करना ही निष्काम कर्म है। जीवन में उपलब्ध को अपनाने से व्यक्ति सहज हो जाता है। प्राप्त को अपनाते ही उसकी छटपटाहट कम हो जाती है अर्थात् स्वीकार-भाव में सहज मार्ग भी छिपा हुआ है।

हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम वापस विश्वविद्यालय में पढ़ाने में व्यस्त हैं। वहाँ पर उन्हें पूर्व राष्ट्रपति के रुप में संबोधित किया जाना उन्होंने पसंद नहीं किया। वे स्वयं को प्यार करते हैं, क्योंकि उन्हें अपने से कोई शिकायत नहीं है। डॉ. कलाम की आत्म-छवि उनके मन में ठीक है, इसलिए उन्हें दूसरों से सम्मान की जरूरत नहीं है।

खुद से प्रेम नहीं करने के कारण

वास्तव में हम स्वयं को प्रेम नहीं करते हैं, तभी तो दूसरों से प्रेम चाहते हैं। हम किसी को भी 'मैं प्यार करता हूँ' क्यों कहते हैं? वास्तव में हम उससे प्यार पाना चाहते हैं व तब तक कहते हैं जब तक कि अगला न कह दे कि वह भी आपको प्रेम करता है। हम प्यार माँग रहे होते हैं। अर्थात् हम खोखले हैं, रिक्त हैं, दुःखी हैं, घायल हैं, टूटे हुए हैं एवं प्रेम की भीख माँग रहे होते हैं, लेकिन कहते हैं कि हम तुम्हें प्यार करते हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि दुनिया में अपनों से सबसे ज्यादा झूठ बोला गया वाक्य 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ' है।

प्रत्येक व्यक्ति की अपने मन में स्वयं की गढ़ी हुई तसवीर होती है। यह तसवीर हम अपनी इच्छाओं, सपनों और दूसरों से चर्चा के आधार पर बुनते हैं। उक्त छवि अनुकूल आचरण होने पर व्यक्ति स्वयं को पसंद करता है। क्योंकि तब छवि व वास्तविकता में अंतर कम होता है। जब व्यक्ति अपनी छवि के विपरीत आचरण करता है तो दोनों छवियों में दूरियाँ बढ़ती है। ऐसे में व्यक्ति स्वयं से

दूर हो जाता है। ऐसे में वह स्वयं से प्यार नहीं कर सकता है। तब वह बाहर से प्रसिद्धि, पद, प्यार एवं पैसा खोजता है। वह स्वयं से संघर्ष करता है। यह संघर्ष तनाव का ही एक रूप है।

हमारे संबंध स्वयं के साथ ठीक नहीं हैं; ऐसे में दूसरों के साथ संबंध ठीक नहीं हो सकते हैं। जब हमारी छवि अनुरूप हम नहीं हैं तो दूसरा हमारी छवि अनुरूप कैसे हो सकता है? जब दूसरा हमारी छवि अनुरूप नहीं होता है तो हम उससे शिकायतें करते हैं। अस्वीकृति हमारे दुःख की जड़ में है। छवि अनुरूप आचरण करने पर हम स्वयं को पसंद व प्यार करते हैं। अपने को प्यार न करना स्वयं की किलेबंदी करना है, जिससे कि दूसरे का प्यार आप तक न पहुँच सके।

अपने मन में बसी स्वयं की छवि हमारे लिए आदर्श होती है। हम उस छवि को अपनी धारणाओं से गढ़ते हैं। वह हमारी ही देन है। फिर जब हमारी करनी के परिणाम आते हैं तो वह छवि कसौटी की तरह कार्य करती है। हम अपनी प्राप्तियों को छवि के अनुसार मूल्यांकन करते हैं। वह छवि हमारा पैमाना बन जाती है।

हम तारीफ क्यों चाहते हैं

जब हम स्वयं को प्रेम नहीं करते हैं, तब दूसरों से तारीफ चाहते हैं। अपना मूल्यांकन दूसरों से क्यों करवाना चाहते हो? दूसरा आपकी हैसियत प्रमाणित करता है, इसका अर्थ यह है कि दूसरा मूल्यवान है; आप तो बेकार हैं। हम अपना मूल्य नहीं समझते हैं। आपकी सार्थकता दूसरा नहीं तय कर सकता। किसी दूसरे के प्रमाण-पत्रों की, व्याख्या की, वर्णन की जरूरत नहीं है। स्वयं का निर्धारण दूसरे के व्यवहार एवं भावनाओं से मत करो। ये तो आपके उत्पाद (Product) हैं। सह-उत्पादन किसी मूल वस्तु का मूल्यांकन तय नहीं करते। इसलिए प्यार बाजार में न खोजें। वह वहाँ मिलता भी नहीं है। धोखा, स्वार्थ जरूर प्यार के भेष में मिल सकते हैं।

मैं प्रेम क्यों नहीं बाँटता हूँ

हमें कोई प्रेम नहीं करता है, इसलिए हम भी दूसरों को प्रेम नहीं करते हैं—यह तर्क घातक है। यह तर्क अधूरा भी हैं। मेरे इस प्रेम करने में क्या रुकावटें हैं? हम परिचितों व अपरिचितों से स्नेह क्यों नहीं करते हैं? हमारा प्रेम क्यों नहीं बढ़ता है? हमने अपने को सीमित क्यों कर रखा है?

लोगों से प्रेम के बजाय हमारे दिल में नफरत क्यों है? अपनों से स्नेह करने में कंजूसी के क्या कारण हैं? हमारे दिल में खोट क्यों है? मित्रों को अपना नहीं मानने के पीछे शोषण का डर है। हमारी भावनाओं की आड़ में वे हमें लूट लेंगे, इस तरह का भय सताता है। जबकि कबीर ने लिखा है 'ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।' प्रेम करने वाला ही सच्चा विद्वान्, पढ़ा-लिखा एवं ज्ञानी है।

हम मनुष्य होकर, जानवर क्यों बने हुए हैं? अर्द्धसत्य के भरोसे मत जीओ। क्या दुनिया में ऐसा कोई नहीं है जो हमसे प्रेम करता हो? क्या ईश्वर बिना प्रेम के हमें रच सकता है? क्या हमारी माँ भी हमसे सदैव रूठी रही? किसी-न-किसी ने तो आखिर हमको चाहा होगा।

जब प्रेम सहज नहीं होकर स्वामी बनना चाहता है, सुरक्षा चाहता है; तब प्रेम देने का न होकर पाना प्रमुख हो जाता है। हमारा प्रेम ही समस्या बन जाता है। वहीं अमृत जहर बन जाता है। प्रेम मुक्त करनेवाला होना चाहिए। यह बाँधता है। इसकी बजाय यह आधिपत्य चाहता है। हमारा प्रेम गड़बड़ है, प्रेम के वेष में कुछ और है। स्वार्थपूर्ति का साधन है। मैं बाँटू प्रेम।

क्या हमारी वासना ने प्रेम का वेश धरा है? हमारा प्रेम ही हमारे विरोधाभासों में उलझ जाता है। हमारी घृणा प्रेम के दरवाजे बंद करती है। जब-जब भी हम घृणा करते हैं, तब हम उतने प्रेम से वंचित रहते हैं। हम प्रेम आने नहीं देते हैं।

हमारे जीवन में प्रेम क्यों नहीं है? इसका पौधा हम क्यों नहीं बोते हैं? प्रेम करने में क्या हानि है? हम अधिकतम लोगों को प्रेम क्यों नहीं देना चाहते हैं? अहंकार, वासना व भय ने हमारे प्रेम को रोके रखा है। हमने अभी तक किसी को शुद्ध प्रेम नहीं किया है। हमारे जीवन में प्रेम लुप्त हो गया। प्रेम भी इच्छा के अधीन हो गया, यह स्वभाव न रहा। एक दिन मर जाएँगे, क्यों नहीं दिल जीतते हैं?

प्रेम करने में खतरा क्या है?

वह मनुष्य नहीं, जिसमें बहती प्रेम की रसधार नहीं। प्रेम दया नहीं है, करुणा नहीं है, प्रयत्न नहीं है, उपाय नहीं है, यह एक सहज अवस्था है। यह मन की उपज नहीं है। यह आपकी भीतरी माँग है।

संसार में हमारा प्रेम व्यक्त होते ही जहरीला क्यों हो जाता है? चूँकि हम उसमें अधिकार चाहते हैं, दूसरे की स्वतंत्रता छीनते हैं, अपने रोगों को व्यक्त कर सहानुभूति चाहते हैं।

स्व से प्यार

जब हम स्वयं को प्यार नहीं करते हैं तो किसी दूसरे को प्यार नहीं कर सकते हैं। स्वयं को प्यार करनेवाला एक दिन स्वतः ही दूसरों को प्यार करने लगता है। स्वयं को प्यार करते-करते हम दूसरों से भी प्यार करने लगते हैं। प्यार करने से प्यार मिलता है। यकीन करने से यकीन मिलता है। संदेह करने पर धोखा मिलता है, यही चेतना की बड़ी विशेषता है। स्वयं को प्यार करना तब स्वार्थ हो जाता है जब वह स्वयं के घेरे से कभी बाहर नहीं आता है।

जब समाज आपके प्रति आपका विश्वास तोड़ देता है तब आप दूसरों पर भी विश्वास नहीं करते हैं।

बातें बंद कर प्यार को प्रकट होने दें। क्या आप अपने प्रति प्यार को अभी अनुभव कर रहे हैं।

जब हम स्वयं को स्वीकार करने लगते हैं, तब स्वतः ही स्वयं को प्रेम भी करने लगते हैं। स्वीकार का परिणाम मौन है। मौन सघन प्रेम की अभिव्यक्ति है। यह प्रेम स्त्री-पुरुष के प्रेम से भिन्न है।

जब आप अपने को स्वीकार लेते हैं तो उसे समझने व जानने की आवश्यकता है। इसके लिए आगे पाठ सोलह समान से कैसे जुड़े पढ़े।

14

बच्चों को पालने की कला एवं विज्ञान

"यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि आधुनिक शिक्षा तकनीकों ने पवित्र जिज्ञासा का पूरी तरह गला घोंट दिया है, क्योंकि एक नन्हे पौधे को प्रेरणा के अतिरिक्त भी कहीं अधिक आवश्यकता होती है जिज्ञासा की, जिसके बिना वह निश्चित ही नष्ट हो जाता है।"

—अलबर्ट आइंस्टीन

"बच्चे जैसा जीते हैं, वैसा ही सीखते हैं। अगर बच्चे डर के माहौल में रहते हैं तो वे निंदा करना सीख जाते हैं। अगर बच्चे प्रोत्साहन के माहौल में रहते हैं तो वे आत्म-विश्वासी बनना सीख जाते हैं।"

—डोरोथी एल. नोल्ट

बच्चों को पालना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसका प्रशिक्षण औपचारिक तौर पर कहीं नहीं मिलता है। जवानी के अंधड़ में प्रकृति-प्रदत्त प्रक्रिया से बच्चे आ जाते हैं। माँ-बाप को बच्चे पालने का ज्ञान नहीं होता है। बच्चे प्रारंभ में समझते नहीं हैं, लेकिन यही उनकी सीखने की उम्र होती है। फ्रायड के अनुसार बच्चे सात वर्ष की उम्र तक ही सीखते हैं। जो सीखा है आगे उसका विस्तार या संकुचन करते हैं। वे अपने माता-पिता व समाज से सीखते हैं, क्योंकि अच्छे-बुरे का उन्हें ज्ञान नहीं होता है। माँ-बाप अपनी धारणाएँ, मूल्य व ज्ञान उन पर थोपते हैं। बच्चे प्रारंभ में क्लीन स्लेट की तरह होते हैं। इस पर उनके परिजन जो करते हैं, जैसे रहते हैं, उसे देखकर बच्चे ग्रहण कर लेते हैं।

अनजाने में माँ-बाप अपने मूल्य व धारणाएँ बच्चों पर थोपते हैं। बच्चे डाँट-डपट से भीरू हो जाते हैं। अधिक लाड़-प्यार से अहंकारी हो जाते हैं। अपने माता-पिता ने जो सिखाया था वही हम अपने बच्चों को सिखाते हैं। मेरे पिताजी बचपन में मुझे पीटते थे। मैंने भी अपने बच्चे को पीटा, जिस पर मेरे बच्चे ने पूछा, 'क्या आपके दादाजी भी आपके पिताजी को पीटते थे'?' मेरे 'हाँ' कहने पर बेटे ने फिर पूछा, 'बड़े दादाजी भी दादाजी को बचपन में पीटते थे।' इस पर मैंने बच्चे से पूछा, 'तू यह सब क्यों पूछ रहा है।' बेटा ने जवाब दिया, 'यह खानदानी गुंडागर्दी कब खत्म होगी? इसलिए पूछ रहा हूँ।' माता-पिता कई बार बच्चों के सामने कठोर व्यवहार करते हैं, जिससे बच्चा अपने माता-पिता को आततायी समझने लगता है। यद्यपि माता-पिता ऐसे नहीं होते हैं।

अपने बच्चों को समझने का प्रयत्न करें और उन्हें स्वाभाविक, सहज और सृजनात्मक रूप से बढ़ने का अवसर प्रदान करें। कला में रुचि रखने वाले बालक को डॉक्टर या वैज्ञानिक बनने के लिए विवश न किया जाए। उसे अपनी प्राकृतिक योग्यता अनुसार आगे बढ़ने और अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान किया जाए। प्रत्येक बालक का सतर्कतापूर्वक मार्गदर्शन किया जाए। उसे अपनी प्रतिभा और योग्यता पहचानने में मदद करें। उसके रुझान और गतिविधियों का निरीक्षण एवं विश्लेषण तथा उसे अपनी इच्छानुसार मार्ग चुनने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। हमें उनकी समस्याओं को एक मनोवैज्ञानिक और उनके आध्यात्मिक मार्गदर्शक की दृष्टि से देखना चाहिए तथा उन्हें उच्च एवं सादा जीवन व्यतीत करने का मार्गदर्शन करना चाहिए।

माता-पिता की शिकायतें

माता-पिता की शिकायतें मूलतः कुछ इस तरह की होती हैं, जैसे कि मेरा बच्चा जिद्दी हो गया है, मेरी सुनता नहीं है, आजकल पढ़ता नहीं है, कुछ खाता नहीं है, शैतानी करता है। दूसरे बच्चों से झगड़ा करता है। गालियाँ देता रहता है। खेलता रहता है। दूसरे बच्चों को पीटता है। दिन भर बस टी.वी. देखता रहता है। कार्टून चैनल छोड़ता नहीं है। समझता नहीं है। हमारे सामने बोलता है। कहना नहीं मानता है आदि।

बच्चे माँ-बाप की क्यों नहीं सुनते हैं

सदैव माता-पिता में गड़बड़ होती है और दोष बच्चों को देते हैं। माता-पिता अपने आचरण एवं गलतियों को नहीं देखते हैं। क्योंकि बच्चे अपने बड़ों का अनुसरण करते हैं। वास्तव में बच्चों को बदलने हेतु स्वयं को बदलने की जरूरत है। बच्चा तो निर्दोष है। वह अपने आस-पास के परिजनों के व्यवहार से सीखता है। बच्चा वही करता है जो उसके माता-पिता करते हैं। उसका कहीं कोई कसूर नहीं है। वास्तव में दोष माँ-बाप में है। इसलिए सुधार हमें अपने में करना है। बच्चे को बदलने की इससे बड़ी कोई विधि नहीं है। जैसा व्यवहार हम चाहते हैं स्वयं वैसा करें। बच्चे को कुछ कहने की जरूरत नहीं है। आपको सुधरना है, गलती बड़ों में है।

हम अपने आचरण द्वारा ही बच्चों को सिखा सकते हैं। बच्चा माता-पिता का अनुकरण करता है। माता-पिता स्वयं तो घर में टी.वी. पर दो-चार सीरियल देखें व बच्चों को मना करें तो बच्चे नहीं मानेंगे। अगर उनको टी.वी. से दूर रखना है तो पहले बड़ों को टी.वी. देखना बंद करना होगा। जब क्रोधी माता-पिता

बच्चे को क्रोध नहीं करने का उपदेश देते हैं तो बच्चा सुनता नहीं है। बच्चे की निरीक्षण शक्ति तीव्र होती है, वह जानता है कि ये खुद तो गुस्सा करते हैं और मुझे छोड़ने की बात करते हैं। इसलिए वह तय नहीं कर पाता कि क्या सही और क्या गलत। बच्चा माता-पिता के दोहरे व्यवहार को पकड़ता है।

इस पर मुझे एक घटना याद आती है। एक पिता अपने बच्चों को बता रहे थे कि नेहरूजी दसवीं तक कक्षा में सदैव फर्स्ट आते थे। तब बच्चे ने पूछा, 'पिताजी, आपकी उम्र क्या है।' पिताजी ने जवाब दिया, 'साठ वर्ष', तब बच्चा कहता है, आप क्या कर रहे हो? नेहरूजी साठ वर्ष की उम्र में भारत के प्रधानमंत्री थे।'

बच्चा सदैव वर्तमान में जीता है। इसलिए वह प्रसन्न रहता है और उसके पास हमसे अधिक ऊर्जा होती है। वह तत्काल हर चीज चाहता है। तभी वह अपनी बात मनवाने की जिद करता है। वह हमारी तरह विचारों में नहीं जीता है। उसकी कथनी-करनी में अंतर कम होता है।

बच्चों की उपेक्षा मत करो। उन्हें पूरा सम्मान दो, उनकी बात ढंग से सुनो। छोटे बच्चे समझ कर उनकी अनदेखी मत करो। उनके प्रश्नों को वजन दो। बच्चों को टालो मत। उनका महत्त्व बराबर है।

माता-पिता होना तो नैसर्गिक घटना है, लेकिन बच्चा पालने की विद्या सीखने की जरूरत है। अपने पुराने अनुभवों को आधार न बनाएँ तो श्रेष्ठ है। लालन-पालन एक कला एवं विज्ञान दोनों है। अतः बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर बच्चों को पालना चाहिए।

माता-पिता व्यक्तिगत रूप से बच्चे का भला चाहते हैं, लेकिन संस्थागत रूप माता-पिता का ठीक नहीं है। मैं माता-पिता के विरुद्ध नहीं हूँ। मेरे मन में उनके प्रति सम्मान है, लेकिन आज उनका संस्थागत स्वरूप विकृत हो गया है। हमें बच्चे पैदा करने के पूर्व पालने का प्रशिक्षण नहीं मिलता है। ऐसे में हम अपने माँ-बाप की नकल करते हैं। हमारे माता-पिता ने हमारे साथ जो सलूक किया, वैसा ही हम अपने बच्चों के साथ करते हैं। अनुशासन व बच्चों के भले के नाम पर माता-पिता की खानदानी गुंडागर्दी स्वीकार्य नहीं है। यह ठीक नहीं, यह विकास नहीं है।

सभी बच्चों का मानसिक स्तर उम्र के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। अतः उसी के अनुसार उनके साथ व्यवहार करना चाहिए। इसलिए बारह वर्ष तक के बच्चों के लिए अलग व तेरह से अठारह के किशोरों के लिए अलग तरह से व्यवहार करना चाहिए।

हमारे व्यवहार पर निर्भर बच्चों का व्यवहार

- बच्चों को प्रोत्साहित करते रहेंगे तो उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा।
- बच्चों के सुख-दुःख में साथ देंगे तो उनका दिल बड़ा होगा।
- बच्चों के गुणों की प्रशंसा करेंगे तो वे भी दूसरों की प्रशंसा करना सीखेंगे।
- बच्चों के साथ मित्रता रखेंगे तो उनको भी अहसास होगा कि दुनिया सुंदर है, वे जीवन का मकसद समझेंगे।
- बच्चों को गलतियों के साथ अपनाएँगे तो वे भी आपको गलतियाँ होने पर अपनाएँगे।
- बच्चों को हमेशा डराते रहेंगे तो वे डरपोक बनेंगे।
- बच्चों को अगर बार-बार दोष देंगे तो वे स्वयं को एवं आपको पसंद नहीं करेंगे।
- बच्चों के साथ दुश्मनी भरा व्यवहार करेंगे तो वे झगड़ालू स्वभाव के बन जाएँगे।
- बच्चों को हमेशा तिरस्कृत करेंगे तो वे हताश हो जाएँगे।
- बच्चों का उपहास करेंगे तो वे नीरस बन जाएँगे।
- बच्चों को लाचार बनाओगे तो उनके मन में संकोच उत्पन्न होगा।

(मेरी पत्नी की डायरी से)

वर्तमान शिक्षा और बच्चे

शिक्षा का तात्पर्य है मनुष्य का सर्वांगीण विकास। ऐसा नहीं होना चाहिए कि विद्यार्थी को केवल किताबी ज्ञान भर दिया जाए, जो उसकी बुद्धि के ऊपर तैरता रहे, जैसे तेल पानी के ऊपर तैरता है। लोगों को अपने अंदर के विचारों, मान्यताओं और भावनाओं के प्रति जागरूक रहना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा किसी प्रकार के दबाव में प्राप्त नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता है तो वह उधार ली हुई शिक्षा होगी, न कि अनुभव द्वारा प्राप्त। सच्चा ज्ञान अपने अंदर से ही शुरू हो सकता है और अपने अंदर के ज्ञान की परतों को खोलने के लिए शिक्षा ही माध्यम है। वास्तविक शिक्षा तो मन और मस्तिष्क के व्यवहार को शिक्षित करने की है।

डॉ. मांटेसरी के अनुसार बच्चे के विकास में खेलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। बच्चों के साथ खेलें।

बच्चों के साथ कभी-कभी उनके मित्रों की चर्चा करें। वे जब घर आएँ तो उनसे संपर्क रखें। बच्चे को उनके मित्रों के चुनाव में मदद करें।

हमारा मस्तिष्क दो गोलार्द्धों में विभक्त है। हाल ही में चिकित्सकों ने पाया है कि ये दोनों गोलार्द्ध एक-दूसरे से पृथक् तो हैं ही, इनकी कार्य पद्धति भी एकदम भिन्न है। दाहिने गोलार्द्ध का संबंध हमारी प्रज्ञा और आकाश से है, जबकि वाम गोलार्द्ध का संबंध हमारी विश्लेषणात्मक क्षमता से होता है। अभी तक हमारा पूरा जोर वाम गोलार्द्ध पर ही रहा है, जिसका संबंध वैज्ञानिक, तार्किक विषयों से, जैसे—लिखना-पढ़ना तथा हिसाब आदि से ही रहा है। इसके अतिरिक्त गायन, वादन, नृत्य, कला आदि पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। जब दोनों

गोलार्द्धों में सुखद एकत्व आता है तब वह एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं, तब व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है।

बच्चों को पालने में माँ का बड़ा हाथ है। बच्चे वैसे भी माँ के ज्यादा संपर्क में रहते हैं। पिता का उन्हें डर भी रहता है। बच्चों के लिए माँ के पास अपनी बात रखना सरल होता है। अतः बच्चों के प्रशिक्षण में माँ की भूमिका बड़ी है। बच्चा सबसे ज्यादा अपनी माँ से सीखता है। अतः माँ को अपनी भूमिका स्पष्ट होनी चाहिए। माँ को बच्चों से संवाद करने की कुशलता आनी चाहिए। बच्चे अपनी समस्याएँ भी माँ से ही शेयर करते हैं। अतः माँ को पहले सीखना चाहिए। जन्म देने से स्त्री औपचारिक माँ बनती है। बच्चों को सही दिशा देकर वास्तव में 'माँ' नाम को सार्थक करती है।

छोटे बच्चे सबसे ज्यादा ग्रहणशील होते हैं। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, त्यों-त्यों उनकी ग्रहण क्षमता कम होती जाती है। टोका-टोकी से बच्चे कुंठित होते हैं।

वाल्ड ने ठीक ही लिखा है कि अच्छे बच्चों के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है उन्हें प्रसन्न रखना।

बच्चों को पालते वक्त ध्यान रखने योग्य बातें

बच्चों को पालने की विद्या बच्चों की उम्र के साथ अलग हो जाती है। इसे हम सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बाँट सकते हैं?

1. जब माँ के पेट में

- घर में सकारात्मक वातावरण रखें।
- गर्भवती महिला को प्रसन्न रखें।
- गर्भावस्था के दौरान माता-पिता आपस में लड़ें नहीं।
- माँ तामसिक भोजन नहीं करे।
- माँ प्रोटीन युक्त व संतुलित आहार ले।

2. शिशु अवस्था

जन्म से चार वर्ष तक शिशु अवस्था है।

- बच्चे का पूरा ध्यान रखें।
- उसे रोकें-टोकें नहीं।
- उसके प्रश्नों का सही जवाब दें।

3. बाल्य अवस्था

पाँच से बारह वर्ष तक बाल्य अवस्था है।

- **बच्चों के लिए मित्र बनें व बच्चों से मित्रवत् बात करें**

आज कंप्यूटर व सूचनाओं का जमाना है। आजकल के बच्चों का आई.क्यू. व ज्ञान माँ-बाप से ज्यादा है। यहाँ तक कि पाँच वर्ष बड़े भाई-बहन में भी ज्ञान का अंतर है। पीढ़ी अंतराल बहुत बढ़ गया है। अतः उन्हें बच्चे न समझें, बराबर के व्यक्ति समझकर उनको महत्त्व दें। प्रायः हम बच्चों की अनदेखी करते हैं। बच्चों के स्वाभिमान को बहुत ठेस पहुँचती है।

बच्चों के साथ दिन में एक बार खाना खाएँ। खाते वक्त बच्चों से सकारात्मक बातें करें। उनसे उनके मित्रों के बारे में पूछें। बच्चों से ढेर सारी बातें करें। इससे उनको समझने का अवसर मिलता है।

भविष्य के नागरिकों का चरित्र माता-पिता द्वारा किए आज के लालन-पालन पर ही निर्भर है। इस समय के बच्चे सर्वाधिक चुनौतियों का वक्त देखेंगे। इसलिए उन्हें प्रबुद्ध व सुयोग्य बनाना हमारा सबसे बड़ा दायित्व है। बच्चों से कभी-कभी उनके मित्रों की चर्चा करें। वे जब घर आएँ तो उनसे संपर्क रखें। मित्रों के चुनाव में बच्चों की मदद करें।

- **सौदेबाजी न करें**

बच्चों से सौदेबाजी न करें कि यदि वे प्रथम श्रेणी में पास हो जाएँगे तो उन्हें स्कूटी आदि दिला देंगे। इस तरह की शर्त से बच्चा समझता है कि आप उसे प्यार नहीं करते। उसे सीधी गिफ्ट दें। इससे बच्चा आपको प्यार करेगा। यदि कभी कोई शर्त रख दी है तो उसे तत्काल पूरा करें अन्यथा वह आप पर कभी विश्वास नहीं करेगा।

- **उपदेश, सलाह, आदेश सीधे न दें**

प्रत्यक्ष उपदेश कोई पसंद नहीं करता है। बच्चों को माता-पिता द्वारा दिन-रात उपदेश देना उनको नहीं सुहाता है। उपदेश किसी को भी अच्छे नहीं लगते हैं। कई बार माता-पिता की शैली ठीक नहीं होती, जबकि उनकी बात सही होती है। बच्चे भी मानते हैं कि वे बात ठीक कहते हैं, लेकिन उनका ढंग उसे अस्वीकार्य बना देता है। माँ-बाप गलत भावना के न होकर भी आज गलत साबित हो रहे हैं। बच्चे तभी खिलाफ हो जाते हैं। बार-बार टोकना बच्चों को तोड़ता है, उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता

है। आदर्शवादी बातों से गांधीजी का एक बेटा विद्रोही हो गया था। इसलिए परिस्थिति पैदा करें, बच्चा शब्द से कम परिस्थिति से ज्यादा सीखता है। साथ ही, उदारहण पेश करें।

बार-बार बच्चों को पढ़ने का आदेश न दें। बल्कि ऐसी स्थिति पैदा करें कि बच्चा स्वतः पढ़ने लग जाए। उसके कमरे में जाएँ, उसकी किताबें देखें, कुछ प्रश्न पूछें या खुद उसके कक्ष में बैठकर पढ़ने लग जाएँ। जब वह बड़ों को पढ़ता देखेगा तो स्वतः ही पढ़ने को प्रेरित होगा। बच्चों को प्रेरक कहानियाँ सुनाएँ।

- **लड़के-लड़की में भेद न करें**

कई माता-पिता लिंग के आधार पर बच्चों में भेद करते हैं, जिसे बच्चे पकड़ लेते हैं। लड़की बोझ नहीं है। उसे हीन न समझें। लड़कियाँ वैसे भी अधिक जिम्मेदार होती हैं। अतः उनके साथ समानता का व्यवहार करें। माता-पिता के लिए आज के युग में लड़के-लड़की में कोई भेद नहीं होना चाहिए। हमारे कर्तव्य दोनों के प्रति समान हैं।

- **अपने सपने बच्चों पर न लादें**

कई बार माता-पिता अपने सपनों को बच्चों के माध्यम से पूरा करना चाहते हैं। पिता डॉक्टर न बन सका तो बच्चों को बनाना चाहता है। बच्चों को उनकी रुचि और प्रकृति के अनुसार शिक्षा दें और आगे बढ़ने दें। अपनी धारणाएँ बच्चों पर न थोपें। आपके समय व आज के समय में फर्क है। हमेशा अपने संघर्ष की चर्चा कर बच्चों को आहत न करें।

- **बच्चों को टोकना बंद करें**

अपना उदाहरण पेश करें। बच्चों को कहकर नहीं, करके दिखाएँ। जब एक सामान्य कंप्यूटर के की-बोर्ड की कुछ 'की' इधर-उधर दबा देने से हैंग हो जाता है, तो बच्चों के मस्तिष्क टोका-टोकी से दबाव में आकर खराब हो जाते हैं। बच्चों का सुपर कंप्यूटर मस्तिष्क ज्यादा टोका-टोकी से हैंग हो जाता है। बार-बार बच्चों को टोकने से उनका आत्मविश्वास कम हो जाता है एवं बच्चे डरपोक हो जाते हैं। अतः बच्चों को डाँटें नहीं। एक शोध में बताया गया है कि एक दिन में बच्चों को छह सौ पच्चीस बार टोका जाता है। इसीलिए आज स्कूलों में बच्चों को शारीरिक दंड नहीं दिया जा सकता।

- **बच्चों की इज्जत करें**

  बच्चों की इज्जत करें, उनकी बात को वजन दें। अन्य कार्य छोड़कर उनकी बात सुनें। मोबाइल पर वार्त्ता को होल्ड रखा जा सकता है, बच्चों को नहीं, वह बाद में बात भूल जाता है। बच्चा अपनी उपेक्षा सहन नहीं कर पाता है।

- **बच्चों को प्रोत्साहित करते रहें**

  बच्चे सृष्टि के नाजुक फूल हैं, उन्हें सतत उत्साहित करना बहुत जरूरी है। बच्चों को जीवन में रस पैदा करने व कर्मठ बनाए रखने हेतु प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। इससे उनको समर्थन मिलता है, उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। बच्चों को कहानियाँ सुनाएँ, शॉपिंग में साथ ले जाएँ। घर के निर्णयों में बच्चों को सुनें।

- **बच्चों को स्वतंत्र व तर्कपूर्ण सोचना सिखाएँ**

  बच्चों को अपनी सोच विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करें। उन्हें प्रश्न पूछकर उनके विचार जानें। उन्हें निर्णय करना सिखाएँ।

4. किशोर अवस्था

तेरह से अठारह वर्ष तक किशोर अवस्था है।

- इस अवस्था में बच्चों के शरीर में सेक्स हार्मोंस सक्रिय हो जाते हैं एवं सेक्स अंतर प्रकट होने लगते हैं। यह विद्रोह की उम्र है, जिसमें किशोर कुछ समझ नहीं पाता है और जनेंद्रियाँ जगने लगती हैं।
- किशोरों को कोई समझता नहीं है। परिवार में भी उनकी कोई सुनता नहीं है।
- वे सबसे कट जाते हैं। अतः उनकी बात पर ध्यान दें।

तभी तो स्वेट मार्डेन ने लिखा है कि प्रेरणाशक्ति द्वारा शिशुओं की उन शक्तियों का विकास किया जा सकता है, जिन पर उनका स्वास्थ्य, सफलता और सुख निर्भर है।

बच्चों को कौन से स्कूल में पढ़ाना चाहिए

हर जगह पर विभिन्न तरह के स्कूल होते हैं। हमें उस स्कूल का चयन करना चाहिए जहाँ बच्चों को अधिक स्वतंत्रता मिलती हो। जहाँ अनुशासन के नाम पर बच्चों को दबाया न जाता हो। जिस स्कूल में पाठ्यक्रम व अध्ययन का समय कम हो, वहाँ पढ़ाना चाहिए। जहाँ परीक्षा में मार्क्स लाना ही एक मात्र उपलब्धि हो एवं दिन-रात प्रतिद्वंद्विता हो, वहाँ अपने बच्चे को न भेजें।

क्या उसे हॉस्टल में रखें?

जितना माता-पिता बच्चों का ध्यान रखते हैं, और कोई नहीं रख सकता। माता-पिता स्वयं उनके साथ संवाद करें। अमूमन हॉस्टल में जाकर बच्चे बिगड़ जाते हैं। हॉस्टल एक व्यावसायिक उपक्रम है। वे बच्चे को एक ग्राहक समझते हैं, जबकि परिवार में बच्चा घर का सदस्य होता है। जब आप अपने बच्चे को नहीं बदल पा रहे हैं तो कोई भी हॉस्टल-वार्डन उसे नहीं बदल सकता है। अपने उत्तरदायित्व से बचने की जरूरत नहीं है।

शरारत करने पर क्या बच्चे को पीटना चाहिए

किसी भी रूप में शारीरिक दंड देना समझदारी नहीं है। शारीरिक दंड देने पर हम बच्चे को अलग कर देते हैं एवं स्वयं को उसकी निगाहों से गिराते हैं। बदमाशी करने का प्रयोजन कई बार बच्चे का आपका ध्यान आकर्षित करना होता है। इसलिए बच्चे को महत्त्व दें।

क्या बच्चों की जिद्द पूरी करें?

बच्चे की हठी प्रवृत्ति उसकी उपेक्षा के कारण पैदा होती है। बच्चा हठ बिना कारण नहीं करता है। आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए व आत्म-सम्मान बढ़ाने के लिए बच्चा हठ करता है। जिन बच्चों को प्यार एवं माता-पिता का संरक्षण मिलता है, वे बच्चे जिद्द नहीं करते हैं। ऐसे बच्चों को सुनने की एवं उनके साथ संवाद करने की जरूरत है। जिद्द तो उसकी प्रकृति बन गई है। जब वह सामान्य हो तब उसे प्यार की जरूरत है।

सार

अत्यधिक लाड़-प्यार बच्चों को बिगाड़ देता है। बच्चों की हर इच्छा तत्क्षण पूरी करने की जरूरत नहीं है। लेकिन बच्चों को सुनना बहुत जरूरी है। उनका सम्मान जरूरी है। इस हेतु संवाद करें।

15

परिवार में शांति एवं बुजुर्गों के साथ रहने की कला

> *"जब आप दूसरों के प्रति अच्छे होते हैं, तब आप अपने प्रति स्वतः ही अच्छे हो जाते हैं।"*
>
> *—बेंजामिन फ्रेंकलिन*
> *(अमेरिकन वैज्ञानिक)*

हमारा जीवन प्रतिध्वनि की तरह है। जो हम देते हैं वही लौटकर आता है। हमारे सारे संबंध ईर्ष्या, स्वार्थ, अहंकार और अशिष्ट व्यवहार से नहीं, बल्कि विश्वास, दया, समझ एवं त्याग से बनते हैं।

परिवार को कैसे जोड़े रखें

रक्त संबंधों का जीवन में बहुत महत्त्व है। खास रूप में ये ही उपयागी होते हैं। सुख-दुःख में इनकी उपस्थिति अनिवार्य है। ये ही सच्चे साथी होते हैं, जो दुःख में काम आते हैं। तभी तो अंग्रेजी में कहावत है कि खून पानी से ज्यादा गाढ़ा होता है।

रक्त संबंधों की बुनियाद परिवार में है। इन संबंधों में ऊष्मा संयुक्त परिवार से आती है। अतः एकल परिवार की तुलना में संयुक्त परिवार को वरीयता दें।

1. मुखिया का नेतृत्व सभी स्वीकारें

परिवार के सभी सदस्य मुखिया की बात मानें तो परिवार में एकता रहती है। इससे छोटे लोगों को सोचने की जिम्मेदारी से अवकाश मिल जाता है। मुखिया समझदार व अनुभवी होता है, जिसके नेतृत्व में सभी व्यक्ति सुरक्षित रहते हैं। जब जीवन के अन्य क्षेत्रों में हम अन्य के नेतृत्व को मानते हैं तो अपने घर में एक को अपना लीडर मानने में क्या बुराई है।

2. समानता का व्यवहार हो

परिवार की एकता का आधार समानता है। पक्षपातपूर्ण व्यवहार से परिवार टूट जाता है। परिवार में सबको न्याय मिलना चाहिए। लोगों से व्यवहार उनकी भूमिकानुसार करना चाहिए। अन्याय कोई बरदाश्त नहीं करता है।

3. आंतरिक आजादी हो

जीवन में आजादी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सभी को अपने-अपने क्षेत्र में आजादी मिलनी चाहिए। परिवार के सभी सदस्यों को अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिए। अपना कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

जो अपने हैं, उनसे रिश्ते टूटते नहीं हैं। टूट जाएँ, तो भी फिर जुड़ते हैं। अतः इन संबंधों को सहज रखें, गलतफहमी न रखें।

4. अपनी मर्यादा न तोड़ें

परिवार में सबकी अपनी मर्यादा है। हो सकता है कि आप अपने कार्यालय या व्यवसाय का नेतृत्व करते हों, लेकिन परिवार में उम्र में छोटे हैं तो सबको सुनना पड़ेगा। आप बड़ों को आदेश नहीं दे सकते हैं। महारानी कैकेयी ने तरीके से दशरथ को अपनी बात मनवाई तो एक बड़ा परिवार तत्समय बिखर गया। अपनी मर्यादा में न रहने के कारण महाभारत हुई। कुरु परिवार बरबाद हो गया। महाभारत की कथा से हम सब परिचित हैं। धृतराष्ट्र की कमजोरी व दुर्योधन की जिद्द ने लाखों लोग मरवा दिए।

जीवन में संबंधों की भूमिका

संबंध ही शक्ति हैं। हम अपने संबंधों के बलबूते पर कठिन काम को आसान कर लेते हैं। जीवन संबंधों के धागों से बुना हुआ है। हमारा जीवन संबंधों के चारों ओर घूमता है। मनुष्य एक जैविक यंत्र नहीं है, इसका नियंत्रण यांत्रिक नहीं है, उसके पास मानस है, उसको मनोवैज्ञानिक ढंग से चलाना चाहिए। इसके लिए आपको संबंध बनाने की कला सीखनी चाहिए।

आप अपने संबंधों से जाने जाते हैं। आप जिनके संपर्क में आते हैं, उनसे आप और वे दोनों प्रभावित होते हैं। अगर आपके संबंध सही लोगों से हैं तो आप लाभ प्राप्त कर सकते हैं; अपनी विपत्तियों से निपट सकते हैं।

संबंध निम्न प्रकार से मदद करते हैं

आपकी सोच का स्तर बढ़ाने में

सत्संग का हमारे जीवन में बहुत असर होता है। जिन लोगों के साथ हम उठते-बैठते हैं, उनकी सोच का असर हमारे जीवन पर आता है। हम भी वैसा ही सोचने लगते हैं। इसलिए सफल व अच्छे लोगों से संबंध रखने चाहिए। सकारात्मक लोगों के साथ रहने से हमारी सोच सकारात्मक होती है। नकारात्मक लोगों के साथ रहने से सोच नकारात्मक होती है। आपको बदलने में संबंध उपादेय है। हम अपने संबंधों में जीते हैं। अतः गतिशील नेतृत्व हमें बदल देता है। व्यक्ति अकेला अपनी आदतों से नहीं लड़ सकता है। लेकिन साथियों के साथ रहकर हम अपने को बदलने में सक्षम होते हैं। सामाजिक संबंध बढ़ाने में संबंधों की बड़ी भूमिका है। हम अपने संबंधों से जाने जाते हैं। हमारे संबंधियों की प्रतिष्ठा से हमारी प्रतिष्ठा भी बढ़ती है। संबंध आपकी नेटवर्किंग बढ़ाते हैं। जिससे आपको नई-नई चीजों का ज्ञान होता है। इस तरह आपको नया अनुभव प्राप्त होता है।

अच्छे लोगों के साथ रहने से तनाव स्वतः ही कम हो जाते हैं। तनाव प्रबंधन में अपनों का साथ बहुत महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक स्थिति सुधारने में संबंध सहायक हैं। हम अपने आर्थिक क्षेत्र में भी अपने संबंधों की मदद ले सकते हैं। उनसे लेनदेन कर हम अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर सकते हैं।

प्रसन्नता और समृद्धि बढ़ाने में

व्यक्ति सदैव खुशी बाँटना चाहता है। हम अपनी खुशी दूसरों के साथ बाँटते हैं, तभी हम खुश रहते हैं। तो संबंध इस तरह खुशी एवं प्रसन्नता बढ़ाकर हमें सृमद्ध करते हैं। साहस बढ़ाने में संबंध सहायक हैं। संबंधों से शक्ति प्राप्त होती है। इससे आत्म-विश्वास भी बढ़ता है।

संबंध जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है; आप अपने से, परिवार से, दोस्तों से, साथियों से, समाज एवं भगवान् तक से जुड़े हुए हैं।

संबंधों ने मेरी उन्नति को भी बहुत प्रभावित किया है। मैं एक गाँव में पैदा हुआ। वहाँ उच्च प्राथमिक स्कूल भी नहीं था। मेरे पिता एक छोटे किसान एवं व्यापारी थे। अर्थात् मेरी परिस्थितियाँ बड़ी सफलता दिलाने में सहायक नहीं थीं। इसके बावजूद मैंने अपने उन दोस्तों के कारण सफलता प्राप्त की, जिन्हें मैंने चुना।

इस पुस्तक की रचना भी एक मित्र की प्रेरणा और सहायता का ही परिणाम है। जिन दिनों मैंने लिखना शुरु किया, उन दिनों गलतियाँ प्रति पृष्ठ करता था।

श्री शंकर मालवीय एवं डॉ. दिलीप धींग ने मेरी सहायता की। अर्थात् यह भी आपसी संबंधों की देन से ही संभव हुआ।

बुजुर्गों के साथ जीने की कला

परिजनों को सम्मान दें,बदलें में प्यार पाएँ

एकल परिवार के कारण बुजुर्ग भार हो गए हैं। पति-पत्नी दोनों जब नौकरी पर चले जाते हैं तब परिवार में बूढ़े माँ-बाप एवं सास-ससुर उपेक्षित महसूस करते हैं। उनकी सेवा का विचार कहीं खो गया है। बुजुर्ग आज अकेले हो गए हैं। संयुक्त परिवार में उनकी सेवा स्वतः हो जाती थी, लेकिन आज वे समस्या बन गए हैं। वे उपेक्षा के शिकार हैं।

बुजुर्गों की अपनी धारणाएँ होती हैं। वयस्कों की धारणाएँ उनसे भिन्न होती हैं। इस तरह पीढ़ी में अंतराल के कारण दोनों की धारणाओं के बीच समन्वय नहीं होता है। ऐसे में उनके सम्मान को आहत किए बिना उनसे असहमत होना सभी को नहीं आता है।

नई पीढ़ी बुजुर्गों को भार समझती है व पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को अपरिपक्व समझती है। यह केवल समझ का फेर है।

परिवार की सफलता में बुजुर्गों की बड़ी भूमिका होती है। कठिन समय में, उलझन में, इनके अनुभव हमारे बहुत काम के होते हैं। जब नाजुक घड़ी हो तो बड़े-बूढ़े साथ में होने चाहिए।

बुजुर्गों के साथ रहने के उपाय

1. बुजुर्गों को सुनें, संवाद न तोड़ें

बुजुर्गों को सुनना बहुत जरूरी है। वे अपने अनुभवों को बाँटना चाहते हैं। वे परिवार का भला ही चाहते हैं, अपनी बात रखना उनको आवश्यक लगता है। अतः घर की जरूरी बातों में बुजुर्गों से राय-मशविरा करना श्रेयस्कर है। बुढ़ापे में संवेदनशीलता अधिक होती है। अतः उनकी अनदेखी न करें। सच्ची बात के नाम पर उन्हें आहत न करें।

आकाश में बैठे भगवान् तो हम किसी ने नहीं देखे हैं। लेकिन धरती पर हमें अवतरित करने वाले भगवान् हमारे माता-पिता को हमने देखा है। हो सकता है

हम उनके विचारों, धारणाओं से सहमत नहीं हों, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं है कि वे बिलकुल गलत हैं और हम ही सही हैं। पूर्व में हमारा ज्ञान भी तो गलत रहा है, हमसे भी चूक हुई है। इसलिए अपने वरिष्ठों को जरूर सुनें। उनके ज्ञान के अप्रासंगिक हो जाने से उनकी दिशा गलत नहीं हो जाती है। इस धरती पर हमारी उन्नति माता-पिता के सिवाय किसी को प्यारी नहीं लगती है; अन्य सभी हमसे ईर्ष्या करते हैं।

2. बुजुर्गों को सम्मान दें

प्रायः बुजुर्ग सम्मान व प्रेम के भूखे होते हैं। घर में उनको यथायोग्य सम्मान मिले तो वे बहुत कुछ त्याग करने को तत्पर रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे परिजनों से कुछ नहीं चाहते हैं। बुजुर्ग भार नहीं, हमारे प्रकाश-स्तंभ हैं।

कई बार हम सोचते हैं कि हमारे माता-पिता ने हमारे साथ ज्यादती की है, हमारा पालन ठीक से नहीं किया आदि। क्या हम उनकी स्थिति में खुद को रखकर ऐसा कह सकते हैं। कभी भी माता-पिता अपनी संतान का बुरा नहीं चाहते हैं, न जान-बूझकर बुरा करते हैं। दंपती तो अपनी संतति के सुख हेतु अपनी तरफ से सबकुछ करते हैं। उनकी सीमाओं को समझाना हमारा धर्म है। क्या हम भी अपने बच्चों के लिए सबकुछ कर पाते हैं? जब हमारी सीमाएँ हैं तो उनकी भी सीमाएँ होती हैं—इस तथ्य को स्वीकारने से हमारी उनके प्रति शिकायतें ढीली पड़ जाएँगी।

3. समय पर भोजन व चिकित्सा उपलब्ध कराएँ

बुजुर्गों को समय पर भोजन मिले, घर में ऐसी व्यवस्था हो व तबीयत खराब होने पर उन्हें चिकित्सा सुविधाएँ मिलें।

बुढ़ापा अपने आप में एक कमजोरी है। पृथ्वी पर उनका समय कम रह गया है। वे अपने-आपसे लड़ रहे होते हैं, शरीर उनका साथ नहीं दे रहा होता है। ऐसे में बेटे-बहुओं से उनको हमदर्दी की अपेक्षा होती है। तब उनका दिल तोड़ना क्या जायज है? हम भी तो अपने बच्चों से ऐसी ही अपेक्षा रखेंगे। इसमें गलत कुछ नहीं है।

जीवन के तीन चरण हैं—बचपन, जवानी, बुढ़ापा। एक दिन हम भी वृद्ध होंगे। तब हम अपने बच्चों से जैसा व्यवहार चाहते हैं, वैसा व्यवहार आज करें तो बच्चे उसे देख अनुकरण करेंगे। यह अपने बच्चों को प्रशिक्षित करने का सही समय

है। क्योंकि सभी घर में वृद्ध मिलें, कोई जरूरी नहीं है। यदि यह अवसर उपलब्ध हुआ है तो उदाहरण पेश कर प्रशिक्षण दें, ताकि हमारा बुढ़ापा अच्छा गुजरे।

जिन बहुओं के सास नहीं होती हैं, उनसे पूछो कि क्या आप सास के बिना रिक्त महसूस नहीं करती हैं?

क्या बहू बेटी हो सकती है?

अपनी बहू को बेटी सदृश रखें, लेकिन उससे वह बेटी नहीं हो जाती है। बेटी माँ से लड़ते हुए भी माँ की चहेती हो सकती है; लेकिन बहू कुछ मामूली सी बात भी कह दे तो सास को बरदाश्त नहीं होगी। अतः बहू को बहू ही रहने दें। शब्द बदल देने से दृष्टि नहीं बदल जाती है। जरूरत दृष्टि बदलने की है, शब्द बदलने की नहीं; जैसे सास को मम्मी कह देने से वह मम्मी नहीं हो जाती है।

बेटा क्यों शादी तक ही माता-पिता का होता है, शादी होते ही उसका झुकाव ससुराल की तरफ क्यों हो जाता है? इस पर सोचें।

नए रिश्तों में गरमाहट होती है। ससुराल में दामाद की बहुत इज्जत होती है, जबकि घर में वह बच्चा होता है। ससुराल में प्राप्त सम्मान व अपनत्व घर को फीका बना देते हैं, क्योंकि घर में तो कभी झिड़क भी खाई होती है। बचपन से लेकर अब तक की स्मृति में बहुत कुछ होता है। लेकिन आप आज जो कुछ हैं, वह घर से ही बने हैं। यदि आपके घर में बच्चे हैं तो फिर आप स्वयं समझ सकते हैं।

भाग पाँच
समाज-प्रबंधन

समाज की इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति समाज पर निर्भर है। यहाँ परस्पर निर्भरता है। समाज के बिना व्यक्ति नहीं रह सकता है। व्यक्ति जंगल में अकेला नहीं जी सकता है। उसे समाज में रहना पड़ता है। वहाँ पर स्वयं को कैसे समायोजित करे व कैसे संपर्क रखे, समाज में अपनी भूमिका तय करना व अच्छी तरह निभाना एक कला है। समाज द्वारा ही हमें पूर्वजों के अनुभव विरासत में प्राप्त होते हैं, जिनकी बदौलत मनुष्य निरंतर विकास कर रहा है। ज्ञान, भाषा, वैज्ञानिक उन्नति सब हमें विरासत में मिले हैं। समाज से कैसे अधिकतम ग्रहण करें व अधिकतम कैसे दें, इस कला का ज्ञान जरूरी है। समूह, राज्य व कानून से अपने को कैसे जोड़ें व कहाँ, कैसे व कितने संबंध रखें। इसमें निष्णात होना ही समाज-प्रबंधन है। समाज नचाता है तो कब नाचना व कब नहीं नाचना यह जानें। समाज में रहते हुए उसके चंगुल से मुक्त रहें।

समाज का हम पर क्या ऋण है, हमसे क्या अपेक्षाएँ हैं? हम समाज को क्या दे सकते हैं? इस रिश्ते की परीक्षा नहीं, इनका उपयोग करना है। व्यक्ति के जीवन में समाज की भूमिका क्या है?

हम समाज में अभिनय करते हुए जीएँ। उससे लीला का रिश्ता रखें। समाज नकारात्मक उद्देश्य के लिए एक होता है, अन्यथा वह संगठित नहीं होता है। 'संघे शक्ति कलियुगे' की सार्थकता परखें।

समाज के बिना मनुष्य महानगरों में घूमने वाला वनमानुष बन कर रह जाएगा।

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री

आचार्य महाप्रज्ञ/ए.पी.जे. अब्दुल कलाम—सुखी परिवार, समृद्ध राष्ट्र!

16

समाज से कैसे जुड़ेः सहयोग कैसे पाएँ

सहनावतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्य करवाहह।
(एक साथ आओ, एक साथ खाओ और साथ-साथ काम करो!)
''अगर हम शक्कर या गुड़ हैं तो हम समाज में ऐसे विलीन हो जाएँगे जैसे समुद्र में नदी या सिंधु में बिंदु। सिंधु में विलीन होने पर बिंदु स्वयं ही सिंधु हो जाता है, बिंदु नहीं रहता।''

—आचार्य विनोबा

समाज प्रबंधन—'वसुधैव कुटुम्बकम्'

भारतीय संस्कृति एकात्म जीवन-दर्शन पर आधारित है। एकात्म जीवन-दर्शन यानी यह पूरा अस्तित्व अलग-अलग घटकों से नहीं बना है, अपितु एक ही तत्त्व अनेक रूप में प्रकट हुआ है। मनुष्य मात्र शरीर, मन, बुद्धि नहीं है; वह ईश्वरस्वरूप है। वह व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और पूरी सृष्टि में व्याप्त आत्मचेतना है। मनुष्य का ही विकसित स्वरूप परिवार है, परिवार का विकसित स्वरूप समाज है, विकसित होनेवाला समाज ही राष्ट्र है और राष्ट्र विश्व का अंग है। ऐसे विश्व को व्याप्त करने वाली और उससे भी परे परमेष्टी स्वरूप आत्मचेतना की अनुभूति करना ही जीवन का लक्ष्य है।

समाज से जुड़ने के सूत्र

जब हम ब्रह्मांड से उत्पन्न होते हैं तो इसको भूल कैसे सकते हैं। जब हम अलग हैं ही नहीं तो फिर सबके साथ रहना ही है। हमारे भीतर पंच तत्त्व ही तो हैं, फिर उनकी अनदेखी कैसे कर सकते हैं। अनंत से बँधे हैं, अनंत की प्रज्ञा मेधा से संचालित है। फिर अनंत के साथ ही रहना है; वैसे ही जैसे हमारे शरीर की सौ खरब कोशिकाएँ मिलकर रहती हैं। आमाशय की कोशिकाएँ भोजन पचाती हैं तो मस्तिष्क की कोशिकाएँ सोचती हैं। हड्डी की कोशिकाएँ वजन उठाती हैं तो स्नायुतंत्र परस्पर सहयोग करती हैं, जहाँ दूर रहना हो तब वे दूर रहती हैं। ये खरबों कोशिकाएँ अपनी-अपनी तरह से कार्य करती हैं व तटस्थ रहती हैं। सब जिस मेधा से होता है, उसी मेधा से हमें समाज के साथ मिलकर कार्य करना है।

मनुष्य अकेले जन्म लेता है, लेकिन समाज उसको पल्लवित, पुष्पित करता है। बिना समाज के सहयोग के मानव-शिशु अविकसित ही रह जाता है। भाषा, ज्ञान, जीने के मूल्य, व्यवहार व तरीके वह समाज से ही सीखता है। हम समाज के ऋणी हैं। संस्कृति व सभ्यता समाज सिखाता है। हम समाज से ही सामाजिक

होना सीखते हैं। हमारी समस्या दोहरी है। हम अकेले नहीं रह सकते हैं। जंगल में जाकर भी नहीं रह सकते हैं। साधू बन जाएँ तो भी समाज चाहिए। गृहस्थ घर में रहता है, साधू मंदिर में रहता है। गृहस्थ बेटा-बेटी की शादी कराता है। वह मंदिर की प्रतिष्ठा कराता है। वह रोटी के लिए समाज पर निर्भर है। दूसरी तरफ समाज में रहना बहुत कठिन हो गया है। समाज आपको व्यक्ति नहीं समझता है। वह आपको सदैव अपने प्रयोजन से देखता है। बाजार आपको उपभोक्ता समझता है। राज्य आपको नागरिक समझता है। परिजन आपको पुत्र, पिता, भाई, चाचा समझते हैं। समाज चाहता है कि व्यक्ति इन भूमिकाओं में अपने कर्तव्यों का पालन करे।

आपके और मेरे बीच का संबंध अथवा मेरे और दूसरे के बीच का संबंध ही समाज है। हमारे संबंध अहं, ईर्ष्या, स्वार्थ पर आधारित हैं। हमारे बीच एक तरह की प्रतिद्वंद्विता है; दुर्भावना है, लेकिन उसने सम्मान का रूप धारण कर रखा है। इससे समस्याएँ सुलझती नहीं, बढ़ती हैं। हमारे उक्त द्वंद्व समाज को तोड़ते हैं, अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। इसलिए स्वयं में आंतरिक क्रांति लाए बिना, अपने संबंधों में सजग हुए बिना, किसी का भला नहीं कर सकते हैं। व्यक्ति को स्वतंत्र होना पड़ेगा। हमें एक-दूसरे को आजादी देनी पड़ेगी।

हम अकेले नहीं रह सकते हैं। सृष्टि-व्यवस्था नियमितता एवं अन्योन्याश्रितता पर आधारित है। अर्थात् हमसब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। स्वतंत्र रूप से किसी व्यक्ति का अस्तित्व संभव नहीं है अर्थात् हम सिर्फ दूसरे मनुष्य पर ही नहीं, पदार्थों से भी उसी तरह जुड़े हुए हैं। इसलिए व्यवहार में निरंकुश नहीं हो सकते हैं। यहाँ एक-दूसरे पर सबकुछ निर्भर है, तब समाज से दूरी कैसे संभव है। हम इस सृष्टि के एक अंश हैं। शेष सब अपनी-अपनी जगह पर रहकर हमारे होने में सहायक हैं। हम ब्रह्मांड के सार-तत्त्व की अभिव्यक्ति हैं।

मनुष्य सदैव द्वंद्वों में ही जीता है। जो समाज उसे बहुत कुछ देता है, वही समाज उससे बहुत कुछ छीन भी लेता है। सिखाते-सिखाते समाज उसका अपने लिए उपयोग भी करता है। एक मनुष्य दूसरे का शोषण करता है। शोषण के क्रम में वह असामाजिक बनता है व मनुष्य अपना चैन व शांति खो देता है। तभी तो आज मनुष्य औरों के साथ जीना सीख गया है, लेकिन खुद के साथ रहना भूल गया है। तभी तो सांसारिक दृष्टि से सफल व्यक्ति भी बेचैनी महसूस करता है एवं अशांत है। मनुष्य समाज के बिना नहीं रह सकता है। लेकिन उसके साथ शांति से रहने हेतु उसे कुछ और सीखना पड़ेगा।

आज मानव समाज धर्म, जाति, संप्रदाय क्षेत्र-विशेष में विभाजित है। धन की खोज ने भाई-भाई को बाँट दिया है। फलस्वरूप मनुष्य स्वयं को अकेला महसूस

करता है। मानव समाज की जगह वह कई अन्य समुदायों में बँट गया है। इन मनुष्य जनित श्रेणियों मे बँटा समाज परस्पर लड़ता है। राष्ट्र बनाता है। अरबों-खरबों रुपए सेना व हथियारों पर खर्च करता है। इस विभाजन से मनुष्य स्वयं की सुरक्षार्थ अनेक बातों व परंपराओं को अपनाकर स्वयं से दूर हो गया है। यही असामाजिकता है।

संबंध समाज के प्राण हैं। अपनों से संबंध बनाए रखने की कला सभी को नहीं आती है। अधिकांश व्यक्ति इस कला में पारंगत न होने के कारण अपनों को नाराज कर देते हैं। संबंध बनाने हेतु स्वयं का बलिदान देना पड़ता है। अपने अहंकार को छोड़ प्रेम देने की कला सीखनी पड़ती है।

आज का व्यक्ति धर्म-जाति, संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा के नाम पर टुकड़ों में बँटा हुआ है। हमारी पहचान अनेक रूपों में है। प्रत्येक वर्ग अपने को दूसरों से ऊँचा समझता है। इसलिए प्रतिद्वंद्विता एवं प्रतियोगिता का बोलबाला है। इस तरह एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के विरुद्ध खड़ा है। अतः मानव विभाजित है। जैसाकि प्रसिद्ध विचारक बर्ट्रेंड रसेल ने मनुष्य को विश्व नागरिक बनने की जरूरत बताई है। उसे किसी खंड में विभाजित नहीं होना चाहिए। हमारी संस्कृति में पूरे विश्व को एक परिवार की संज्ञा दी गई है। जब हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' को अपना लेंगे तो ही समाज में शांति स्थापित हो सकती है।

जब तक मनुष्य विभाजित है तब तक दूसरों से जुड़ नहीं सकता है। मनुष्य अपने बाड़ें में बंद है एवं विभाजन का दंश भुगत रहा है। जब तक इकाइयाँ विभाजित हैं, समाज जुड़ नहीं सकता है।

समाज से जुड़ने के उपाय

1. विनम्र बनें

आज हम विनम्रता का लबादा ओढ़कर सबसे जुड़ जाते हैं। अपने प्रयोजन हेतु जब जरूरत हो, दूसरों को अपना बनाने का स्वाँग रचते हैं। लेकिन वास्तव में किसी से जुड़ते नहीं हैं। तभी यह कहा जाता है कि व्यक्तिगत रूप से हम अच्छे हैं, एक समूह के रूप में हम ठीक नहीं हैं।

2. सामाजिक जिम्मेदारी समझें

अपने घर को हम स्वच्छ रखते हैं, लेकिन कूड़ा सड़क पर फेंक देते हैं। तब हमें सड़क अपने घर का अंग या विस्तार नजर नहीं आती है। अपने-अपने शौचालय हम कैसे साफ रखते हैं, लेकिन सार्वजनिक शौचालयों को साफ रखने में हम

सहयोग नहीं करते हैं। तभी हमारे सार्वजनिक शौचालय कितने गंदे रहते हैं। यहाँ हम अपनी ही फिक्र करते हैं। जबकि पश्चिम का आदमी घर में गंदगी रख सकता है, लेकिन सार्वजनिक जगहों को साफ रखने की जिम्मेदारी समझता है। हम यहाँ पर केला खाकर छिलका सड़क पर फेंक देते हैं, लेकिन पश्चिम में जाकर ऐसा नहीं करते हैं।

परस्परोग्रहो जीवानाम्

वैसे जातिगत समाज छोटे सोच पर आधारित होता है व मानव समाज उसका विस्तृत रूप है। हमारी त्रासदी यह है कि हम जातिगत समाज की संकुचितता तो स्वीकार लेते हैं, लेकिन मानव समाज की महानता को नहीं मानते हैं। सही अर्थों में सामाजिक होने के लिए हमें जातिगत समाज से ऊपर उठना चाहिए।

इस समस्या का कारण हमारा अनेक वर्गों में बँटा होना है। इसलिए हम किसी भी जगह पर जिम्मेदारी महसूस नहीं करते हैं।

भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद ने अपना बलिदान क्यों दिया?

जातिगत समाज से जुड़ने के लिए तो जातिगत मान्यताओं को स्वीकारें और उनके साथ बहें। समूह का हिस्सा बनने में अपनी बुद्धि को त्यागें व समाज के तथाकथित नेतृत्व की सराहना करें। जातिगत समाज द्वारा तय मूल्यों के अनुसार जीएँ। कभी-कभी अच्छा चंदा दें।

'मेरा जातिगत समाज ने अहित किया है, मेरा जीवन बरबाद किया है। मैं ऐसे जातिगत समाज में विश्वास नहीं करता हूँ।' लेकिन यह सब आपको किसने सिखाया। यह सब आप कैसे कह पा रहे हो। यह सब आपने अपनी संस्कृति से सीखा है। उस संस्कृति की बड़ी देन को तो मानते हैं, उसकी छोटी सी कमजोरी के कारण सबको अस्वीकारा नहीं जा सकता है। यह सनातन संस्कृति मानव समाज की ही बात करती है। समाज को स्वार्थी तत्त्वों ने विभाजित किया है। वे आदर्श नहीं, हमारी कमजोरियाँ हैं।

17

कृष्ण जैसे सच्चे मित्र की मदद से तनाव को जीतें

"जिस प्रकार पुरानी लकड़ी जलने में उपयोगी है, पुराना घोड़ा चढ़ने में अच्छा, पुरानी पुस्तकें पढ़ने में सुंदर तथा पुरानी मदिरा पीने में लाभकर, उसी प्रकार पुराने मित्र भी सदैव विश्वसनीय एवं श्रेष्ठ होते हैं।"

–लियोनार्ड राइट

"अपने मित्रों को सदैव संतुष्ट रखने का सर्वोत्तम तरीका है कि न तो उन्हें ऋण दो और न कभी उनसे ऋण लो।"

–पाल द' कॉक

सच्चा दोस्त बिना शर्त प्यार, बिना मतलब बात, बिना शर्त सहयोग, बिना आशा आपकी रक्षा करता है। यही हृदय की मित्रता है।

अपने अभिन्न दोस्त को अपनी बात बताकर आप हलके हो सकते हैं। अपने दिल के दर्द को बाँटना भी कुंठा से मुक्त होना है। दोस्त आपके घावों को भरने में मदद करता है। अपनी दुःख की चर्चा से समस्या के नए आयाम स्पष्ट होते हैं, जिससे समाधान के द्वार खुलते हैं। सखा आपको समझता है, आपको सुनता है, आपकी मदद करता है। मुसीबत में वह आपके पास खड़ा होता है, अपने दुःख की चर्चा से उस दुःख के मूल में जो समस्या है, उसके समाधान के द्वार खुलते हैं।

मेरे एक मित्र के भाई ने कुछ समय पूर्व आत्महत्या कर ली। उसके पिता ने बताया कि उनका बेटा आत्महत्या करने से पूर्व एक दोस्त के घर गया था। तब वह दोस्त वहाँ पर नहीं मिला था। काश वह मिल जाता तो उनका बेटा शायद बच जाता। वह अपनी वेदना उस दोस्त के साथ बाँट देता तो उसका विचार बदल सकता था।

बिना परीक्षण किए दोस्त पर भरोसा न करें। स्वार्थी दोस्त आपका शोषण भी कर सकता है। आपके तनाव का मजाक भी बना सकता है। क्या आपके पास तनावों को दूर करने वाले मित्र हैं?

सम्राट् अकबर तेरह वर्ष की उम्र में राजगद्दी पर बैठा व पहली लड़ाई का नेतृत्व किया। वहाँ से वह महान् अकबर कैसे बना? उसके पास नवरत्न थे। ये नवरत्न उसके समझदार मित्र व सलाहकार थे, जिनकी सहायता से वह शासन में निर्णय

करता था। बीरबल जैसे चतुर व अनुभवी मित्र के साथ उसके संवाद जगप्रसिद्ध हैं। बीरबल अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर ऐसी आश्चर्यजनक परिस्थिति पैदा कर देता था कि कोई समस्या या गुत्थी प्रयोगात्मक रूप से सुलझ जाती।

मुसीबत में अच्छा मित्र ही साथ देता है। सच्ची एवं नेक सलाह भले ही तत्क्षण कड़वी लगे, लेकिन जिसमें आप का भला हो, वह सच्चा दोस्त ही दे सकता है। अतः दोस्त बनाने के पूर्व सतर्कता बरतें। बुरा वक्त आने के पहले ही परीक्षा कर अच्छे दोस्त बना लें, ताकि आप बुरे दिनों में अकेले न हों।

कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन अपने सामने परिजनों को देख द्वंद्व में फँस जाता है। वह अपने पितामह भीष्म, गुरु द्रोण व कृपाचार्य आदि पर वार नहीं करना चाहता था। तब अर्जुन को इस तनाव से मुक्त किया कृष्ण ने। कृष्ण अर्जुन के एक अच्छे मित्र थे। कृष्ण ने इसी हेतु भगवद्गीता का उपदेश दिया।

आपके पास धन कम हो, भवन छोटा हो तो चलेगा, लेकिन मित्र जरूर सच्चे व अच्छे रखो। मित्र से बड़ा कोई आभूषण व अस्त्र नहीं है। अच्छे मित्रों का बीज अभी समाप्त नहीं हुआ है। चूँकि आप भी तो किसी के अच्छे मित्र हैं। हाँ, सज्जनों में दोस्ती थोड़ी धीरे होती है, नशा करने वालों में दोस्ती शीघ्र होती है। अगर उनमें दोस्ती शीघ्र होती है, तो दोस्ती टूटती भी उसी गति से है।

अच्छे मित्र पर भरोसा करें व स्वयं मित्र-धर्म अच्छे से निभाएँ।

अच्छे दोस्त की पहचान

- वह बुरे समय में आपका साथ न छोड़कर सहयोग करता है।
- वह आपकी खुशी में खुश होता है एवं प्रतिकूल स्थिति में आपको ढाढ़स बँधाता है।
- अच्छा मित्र आपको सही बात बताता है,चाहे वह कड़वी हो। गलती करने पर आपको टोकता एवं रोकता है।
- अच्छा मित्र आपका शोषण नहीं करता है, लेकिन वह आपका उचित सहयोग एवं समर्थन समय पर चाहता है। वह आपका दुरुपयोग नहीं करता है, बल्कि औरों के द्वारा आपका दुरुपयोग करने पर आपको सचेत करता है।
- आपकी प्रतिभा, गुणों एवं शक्तियों को बढ़ाने में आपका सहयोग करता है एवं कमजोरियों, अवगुणों एवं बुरी आदतों को हतोत्साहित करता है।

कृष्ण-अर्जुन की मित्रता का आधार सखा-भाव है। यह उत्तम श्रेणी की मित्रता है। कृष्ण-अर्जुन के ही नहीं, सुदामा के भी अभिन्न मित्र थे। इसके साथ ही राधा के भी वह सच्चे मित्र थे।

क्या आपके मित्र कैकेयी की दासी मंथरा जैसे हैं या फिर धृतराष्ट्र के संजय जैसे हैं? अगर आज आपका कोई दोस्त नहीं है तो कारण यह नहीं है कि सौ करोड़ में से कोई अच्छा दोस्त बनाने लायक व्यक्ति नहीं है। बल्कि आप दोस्ती करना नहीं जानते हैं अर्थात् आप में अच्छा दोस्त होने की पात्रता नहीं है। उस हेतु आप में गुण, साहस, त्याग व समय देने की भावना नहीं है। इससे स्पष्ट है कि जब आपका कोई अच्छा मित्र नहीं है तो आप भी किसी के अच्छे मित्र नहीं हैं। पैर में काँटा चुभने पर सारी जगह पर चमड़ा न बिछाकर अपने पाँव में जूते पहनते हैं। जगत् को बदलने की जरूरत नहीं है, स्वयं पहल करते हुए दोस्त बनाना सीखें।

दो गायक मित्र थे, दोनों साथ-साथ गाते थे। किसी कारणवश दोनों में दोस्ती टूट गई। कुछ समय बाद एक मित्र बीमार पड़ गया। उसकी आर्थिक हालत खराब हो गई। वह अपना इलाज कराने में भी असमर्थ था। दूसरे मित्र को उसका पता लगा तो उसने एक ट्रस्ट बनाकर उसका इलाज कराया। वह पुनः ठीक हो गया एवं गाने लगा। एक दिन वह उस ट्रस्ट को धन्यवाद देने गया। मित्र को पाकर दंग रह गया। दोनों की मित्रता पुनः स्थापित हो गई।

दोस्त कैसे चुनें व सही लोगों से मित्रता कैसे बनाएँ

आप अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य रिश्तेदारों को नहीं चुन सकते, लेकिन मित्र आप चुन सकते हैं। इसलिए मित्र बनाते वक्त ध्यान रखें कि आपके सही लोगों से संबंध होने चाहिए, इसके लिए आपको अपने मन का दरवाजा खुला रखना चाहिए। प्रारंभ में आपके अध्ययन, कार्य एवं निवास के क्षेत्र के हिसाब से औपचारिक संबंध बनते हैं। इसे जारी रखने के लिए नववर्ष बधाई-संदेश एवं दीपावली की शुभकामनाएँ भेजें। अपने से वरिष्ठ लोगों से शिष्टाचार-भेंट करें। जब कभी राह चलते मिलें तो उन्हें नमस्कार करें। नमस्कार करने में विनम्रता व मुसकराहट होनी चाहिए। इससे संदेश जाता है कि आप अच्छे हैं; वे आपके लिए भी अच्छी कामना करेंगे। शुभकामनाओं का आपसी संबंधों में बड़ा महत्त्व है।

अगर आपके औपचारिक संबंध हैं तो आप उन्हें विकसित करें, वक्त आने पर वे आपके काम आ सकते हैं।

हम कई लोगों के साथ पढ़ते हैं, परंतु उनमें से कुछ के ही लक्ष्य, पृष्ठभूमि एवं नैतिक मूल्य हमारे जैसे होते हैं। ऐसे लोगों से संबंध बढ़ाने चाहिए। समान उद्देश्य होने से ऐसों में चर्चा एवं विचारों का आदान-प्रदान होता है।

एक ही लक्ष्य होने से समस्याएँ भी समान होती हैं। इससे मित्रता गहरी होती है।

यहाँ आपको बहुत सावधान रहने की जरूरत है। आपको उन्हीं लोगों से संपर्क रखना चाहिए, जो आपको व आपकी समस्याओं को समझते हैं। आपको उनकी विश्वसनीयता को परखना चाहिए कि वे विश्वासयोग्य हैं या नहीं। अगर आप उन पर भरोसा कर सकते हैं तो बेहतर है कि उनसे मित्रता बढ़ाएँ।

मित्रता सदैव बराबरी वालों में संभव है। महाभारत के कृष्ण और सुदामा के बीच की मैत्री एक दुर्लभ उदाहरण है।

मित्रों में प्रगाढ़ता स्वतः सहज बनती है, इसे बनाया नहीं जा सकता। यह परस्पर विश्वास से उपजती है। घनिष्ठ मित्र एक-दूसरे के लिए जीते हैं।

जिनके साथ आप समय गुजारते हैं, वे आपको प्रभावित करते हैं।

नकारात्मक लोग आप में नकारात्मकता बढ़ाते हैं।

आशावादी लोग आप में आशावाद बढ़ाते हैं।

साहसी लोग आप में साहस भरते हैं।

सफल लोग आपको सफलता की ओर बढ़ाते हैं।

अगर किसी के अवगुण आपको पसंद नहीं है, तो उनसे बचें।

युवक-युवतियों के बीच मित्रता

हम अब पश्चिम जगत् के टी.वी., फिल्म एवं बाजारवाद के प्रभाव में हैं। स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता का प्रचलन अब हमारे यहाँ भी बढ़ रहा है। यह न अच्छी, न बुरी है, अपितु आज यह एक सामान्य बात है। लेकिन विपरीत लिंग की मित्रता में सजगता जरूरी है। कभी यह मित्रता प्यार का रूप भी ले सकती है।

आपको स्त्री-पुरुष मित्रता पर अधिक ध्यान नहीं देना है। यदि आपके लक्ष्य, मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण एवं पृष्ठभूमि समान है तो आपको एक-दूसरे से मित्रता करनी चाहिए, अन्यथा इसमें खतरा है। इसमें थोड़ी सावधानी जरूर बरतनी चाहिए।

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ऐसी दोस्ती में परस्पर दूरी बनाए रखें अन्यथा आप लक्ष्य से भटक सकते हैं। अगर आप भावना में बहे तो आपका समय एवं ऊर्जा व्यर्थ जाएगी। इसके साथ ही अन्य सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याएँ भी खड़ी हो सकती हैं। इसलिए निश्चित दूरी बनाए रखें, जिससे आपकी मित्रता बनी रहे। इससे आपके जीवन में कोईर् बाधा एवं तनाव नहीं आएँगे।

अपना मुख्य लक्ष्य प्राप्त करने के बाद आप एक-दूसरे के अधिक करीब आएँ। थोड़े परिपक्व होकर जिम्मेदारी के साथ आगे बढ़ें। अपना मुख्य लक्ष्य प्राप्त करने के पूर्व अधिक करीब आ जाएँगे तो सफलता एवं लक्ष्य से दूर हो जाएँगे। यहाँ तक कि आपके परिवार एवं दोस्त तक आपका साथ छोड़ सकते हैं। यह मित्रता अभिशाप भी साबित हो सकती है। यदि आप स्त्री हैं तो गलत मित्र आपकी बदनामी एवं शोषण भी कर सकताहै।

आर्थिक लेन-देन और मित्रता

मित्रों में आर्थिक लेन-देन अनेक बार विवाद का कारण बनता है। अतः परस्पर उधार के लेन-देन में सावधान रहें। उधार देने के पूर्व मित्र का परीक्षण कर लें। कई बार आर्थिक लेन-देन के बाद निःस्वार्थ मित्रता नहीं रह पाती है। इससे मित्रता पर संकट आ सकता है। इसी कारण अधिकांश मित्रताएँ टूटती हैं।

दोनों मित्र स्वस्थ सोच वाले, जिम्मेदार व ईमानदार नहीं हैं तो मित्रता खटाई में पड़ सकती है।

व्यापार में साझेदारों के बीच अमूमन कुछ समय बाद निभती नहीं है। अच्छे मित्र भी अच्छे साझेदार कई बार नहीं हो पाते। इसका कारण परस्पर अविश्वास है। अतः अच्छी साझेदारी को निभाने के लिए प्रत्येक साझेदार को अपने आर्थिक संव्यवहार जैसे निवेश, खर्च, उपहार की चर्चा दूसरे साझेदार से करनी चाहिए, ताकि अविश्वास की गुंजाइश नहीं रहे। साझेदारी को निभाने का यह अच्छा नियम है।

लोगों से प्रगाढ़ संबंध बनाने के सात व्यावहारिक उपाय

1. स्वार्थी न बनें

कुछ प्राप्त करने की आशा में कभी भी संबंध न बनाएँ। ऐसे संबंध एकतरफा होते हैं। ये स्थायी नहीं होते। संबंधों को बनाते वक्त ध्यान रखें कि वे कुछ पाने के लिए नहीं, देने हेतु बनते हैं। मतलब से संबंध नहीं बनते हैं।

आपसी रिश्ते लेन-देन पर आधारित नहीं होते। आपको सिर्फ देने पर ध्यान रखना चाहिए। संबंधों से कुछ पाने की इच्छा उचित नहीं है।

संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए आपको कम-से-कम एक महीने तक इन उपायों का प्रयोग करना चाहिए। इनको आपकी आदत का हिस्सा बनने में तीन माह लग सकते हैं। अत्यंत सावधानी एवं ध्यान से इनको व्यवहार में लाएँ।

कृष्ण जैसे सच्चे मित्र बनाने के साथ ही स्वयं भी कृष्ण जैसी मित्रता निभाएँ। अपने मित्र की मुक्त हस्त से मदद करें। कृष्ण जैसा महारथी युद्ध में अर्जुन का सारथी बनता है। आप भी अपने मित्र के प्रत्येक कार्य को दिल से करें। उसकी मदद के प्रत्येक अवसर का उपयोग करें।

अपने अजीज मित्र भगवतीलाल उदावत को जब भी याद करता हूँ, तत्काल हाजिर हो जाते हैं। किसी भी समस्या पर चर्चा करनी हो तो दूसरे मित्र एच.एल. कुणावत प्रत्येक विषय का विश्लेषण करने में मदद करते हैं।

2. ईमानदारी एवं गंभीरता से प्रशंसा करें

हम सबमें कुछ विशेष गुण होते हैं, उन्हें पहचानें एवं बिना किसी हिचक के उनकी प्रशंसा करें। प्रशंसा एक चिकनाहट है, जो रिश्तों को मधुर बनाती है। निष्कपट भाव से प्रशंसा कीजिए। झूठी तारीफ न करें, वह चमचागिरी है। व्यक्तियों की छोटी-छोटी अच्छाई को नोट करें और उनकी प्रशंसा करें। उसे बार-बार वार्त्ता में दुहराना चाहिए। अगर आप दूसरों में अच्छाई खोजते हैं तो उन्हें सीख भी सकते हैं।

दूसरे व्यक्ति में सच्ची रुचि लें। उसकी प्रशंसा करें। अगर आप शहद इकट्ठा करना चाहते हैं तो छत्ते को ठोकर नहीं मारें। कई बार पीठ थपथपाना भी अच्छा लगता है। दूसरे व्यक्तियों की भावना की कद्र करें; दूसरे व्यक्ति को महसूस कराएँ कि वह वास्तव में महत्त्वपूर्ण है और आप उसे दिल से पसंद करते हैं।

3. आलोचना एवं शिकायत न करे, न ही सलाह दें

आलोचना किसी को भी नहीं सुहाती, इसलिए इससे बचें। कोई पूर्ण नहीं है। हम सभी में कमजोरियाँ होती हैं। गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। अतः दूसरों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखें।

व्यक्तियों की गलतियों को उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से याद दिलाएँ। अगर याद दिलाना जरूरी नहीं हो, तो उन्हें भूल जाएँ। फिर भी याद दिलाना जरूरी हो, तो पहले अपनी भूलों की चर्चा करें, फिर दूसरों की भूलों की चर्चा करें।

बिना माँगे सलाह कभी न दें। फिर भी सलाह दें, तो बहुत सावधानी से दें। भूमिका बनाकर व्यक्ति की मनःस्थिति समझकर अप्रत्यक्ष तरीके से सलाह दें, कहानी या उदाहरण के साथ दें।

4. तीन प्रभावकारी शब्दों का प्रयोग करें

व्यवहार में 'धन्यवाद', 'क्षमा करना' एवं 'कृपया' तीन प्रभावकारी शब्द हैं। इसलिए इनका प्रयोग खुलकर व बार-बार करें। इन शब्दों का प्रयोग मशीन की भँति न करें। ये आपके दिल से निकलने चाहिए। ये आपकी मनोवृत्ति को दरशाते हैं। 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग आप द्वारा दूसरों को महत्त्व देने की भावना दिखाता है। आपकी भूलों की स्वीकृति 'क्षमा करना' शब्द दिखाता है। 'कृपया' शब्द आपकी विनम्रता एवं शिष्टाचार को दरशाता है। यह दिखाता है कि आप दूसरों की भावना का ध्यान रखते हैं।

5. मित्रवत् व्यवहार करें

दूसरों को समझना टेढ़ी खीर है। हम सब अपनी आदतों में जीते हैं। हम अपनी दृष्टि से ही दूसरों को समझते हैं। दूसरों के प्रति मित्रवत् व्यवहार करें, उनके सहयोगीबनें।

जीवन में खास बात यही है कि आप दूसरों के लिए क्या करते हैं। दूसरे लोगों के बारे में सही सोचें। दूसरों को महत्त्व दें।

अमूमन मित्रता बराबरी में मिलती है। मित्रता करने में अपनी तरह से परिचय दें। समय-समय पर नए मित्र बनाएँ। प्रत्येक अवसर पर अपना परिचय दूसरों को दें। लोग अपनी तरफ ध्यान चाहते हैं, अतः उन्हें मौका दे, ताकि वे स्वयं को व्यक्त कर सकें। दूसरों में रुचि रखें एवं उन्हें ध्यानपूर्वक सुनें। प्रति सप्ताह पाँच-दस व्यक्तियों से परिचय बढ़ाएँ। इनमें से एकाध को मित्र बनाएँ।

6. लोगों को उनके नाम से संबोधित करें

इतनी बड़ी दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति एक शब्द से प्यार करता है, वह है उसका नाम। इसलिए उसका नाम याद रखें। यह उसे विश्वास दिलाता है कि आप

उसमें रुचि रखते हैं। प्रथम परिचय में अगर आप उसका नाम साफ नहीं सुन पाते तो दुबारा पूछिए। बातचीत में तीन-चार बार उसके नाम का प्रयोग कीजिए।

नेपोलियन अपनी सेना के एक लाख से अधिक जवानों के नाम जानता था। तभी वह अपनी सेना में लोकप्रिय था। अपनी वार्त्ता में व्यक्ति को उसके नाम से संबोधित करें। इससे व्यक्ति को महत्त्व मिलेगा। बड़े लोगों को हमारी संस्कृति में नाम से नहीं पुकारते हैं।

7. दूसरों का बातें सुनें

अमूमन हम अपनी बात कहना चाहते हैं, सुनना कम चाहते हैं। लेकिन संबंध बनाने हेतु अगले की बातें ध्यानपूर्वक सुनें। इससे वह आपको महत्त्व देगा। सुनना एक बड़ी कला है। ज्यों ही आप अच्छे श्रोता बनेंगे, ढेर सारे मित्र आपके साथ रहना पसंद करेंगे।

"अच्छे मित्रों को पाना कठिन, वियोग कष्टकारी और भूलना असंभव होता है।"

—रेनाल्ड

18

जीवन-शैली को बदलने की प्रक्रिया में उत्पन्न प्रश्न

"मैंने बातों से कभी नहीं सीखा, मैं तभी सीखता हूँ जब प्रश्न पूछता हूँ।"

—लाओत्से

"एक बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न स्वयं आधा विवेक है।"

—फ्रांसिस बेकन

इस पाठ में जीवन-प्रबंधन संबंधी ऐसे प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं, जिनकी चर्चा अन्यत्र पुस्तक में नहीं है। पाठ में आपकी शंकाओं का समाधान करने का प्रयास किया गया है, जिससे आपको प्रबंधन में सुविधा हो, जिससे आपकी समझ गहरी हो।

पुस्तक संबंधी प्रश्न

• **इस पुस्तक में क्या खास बात है?**

—इस पुस्तक में आपसे अधिक खास बात नहीं है। यह तो आपके भीतर की खास बात को जगाने की बात करने वाली मात्र एक सहायक है, सांकेतिक है। आप इसमें वर्णित उपायों का प्रयोग कर इसको सार्थक बना सकते हैं। यदि आप प्रयोग नहीं करेंगे तो यह रद्दी का ढेर है। खास बात तो आप में हैं

• **आपकी पुस्तक कैसे पाठक के हित में है?**

—पाठक पुस्तक में वर्णित उपायों का प्रयोग कर सकता है। इन पर विचार करें; अभ्यास करें। लाभ होगा।

• **आप सभी प्रश्नों का सही उत्तर कैसे जानते हैं?**

—मैं अपने जीवन को व्यवस्थित, संतुलित व खुशहाल बनाने को बेकरार रहता हूँ। इस यात्रा में मुझे बहुत खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं। उनको शेयर करना मुझे अच्छा लगता है। शायद ये अनुभव आपको कुछ ठोकरों से बचा सकें। आपको अपने पहिए का आविष्कार न करना पड़े इस हेतु लिखता हूँ। आविष्कारित पहिए से गाड़ी चलती रहे।

- **आप जीवन-प्रबंधन के विशेषज्ञ कैसे बनें हैं? आप पुस्तक लिखने योग्य कैसे बनें?**

—मैं भी एक जिज्ञासु हूँ। जीवन को खुली आँख व कान से देखता हूँ। मेरी इस यात्रा में भी उतार-चढ़ाव आते हैं। मेरी गाड़ी भी हिचकोले खाती है। ऐसे में अन्य महानुभवों के अनुभवों की रोशनी में अपनी यात्रा को बेहतर बनाने का प्रयास करता हूँ। इस उपक्रम में मुझे कुछ उपाय सार्थक लगे। इसलिए लिपिबद्ध करता हूँ। आप सब भी अपने-अपने जीवन के प्रबंधक हैं।

- **आप किताब लिखने के पात्र कैसे बनें? आपकी बातों का आधार व प्रमाण क्या है? आपकी बातों से मुझे कहीं हानि न हो जाए।**

—अपने अनुभवों को शेयर करना उचित समझता हूँ। आपकी समझ व ग्रहणशक्ति पर बहुत कुछ निर्भर है। होगा तो सिर्फ लाभ ही होगा, हानि तो कभी नहीं होगी।

प्रबंधन-संबंधी प्रश्न

- **क्या दुनिया में कहीं जीवन-प्रबंधन सिखाया जाता है? क्या आपके पास मैं इस हेतु आ सकता हूँ? क्या आप इस तरह का कोई कोर्स चलाते हैं? आपकी इसके सिवाय इस विषय से जुड़ी अन्य कौन सी पुस्तकें हैं?**

—आपके जीवन का बेहतर प्रबंधन आप अपना लक्ष्य तय कर, वस्तुस्थिति व समय को पहचानकर कर सकते हैं। यह एक पाठ्यक्रम का विषय नहीं है। हम इस तरह का कोर्स नहीं चलाते हैं। मेरे द्वारा लिखित पुस्तकें हैं—'उठो जागो' व 'तनाव छोड़ो-सफलता पाओ'। इन्हें पढ़कर आप कुछ मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

- **जीवन में कुछ भी साथ न दे रहा हो तो ऐसे में कैसे जीना?**

—यह आपकी निराशा व थकान का संकेत है। आप भयंकर रूप से विपरीत स्थिति से गुजर रहे हैं। आप अपने से लड़ रहे हैं। तनिक रुकें, रिलैक्स करें। दो-चार दिन कहीं बाहर घूमने जाएँ। शांत होने पर स्वीकार भाव जनमेगा, तब आप अपने बुरे दिनों से बाहर आने हेतु कदम उठाने में समर्थ होंगे। घने अँधेरे के बाद उजाला आता है।

- **जब मन उदास हो तो प्रसन्न होने हेतु क्या करना चाहिए?**

—जीवन बहुत विराट् है। इसे छोटा कर न देखें। हमारा यहाँ होना ही महत्त्वपूर्ण है। हम यहाँ न होते तो क्या कर लेते। हमारा अस्तित्व पर कोई जोर थोड़े ही है। उपलब्ध जीवन जैसा भी है, उसमें से जीने की राह निकालें। यही आप श्रेष्ठ कर सकते हैं। विचार न करें, कर्म करें। व्यस्तता आपकी प्रसन्नता बढ़ा सकती है। अपने प्रति सजग हों, मन में उठते विचारों व भावों को साक्षी भाव से देखें। जब अच्छे दिन नहीं रहे तो यह बुरा वक्त भी बीत जाएगा।

- **मैं जीना नहीं चाहता हूँ। क्या आत्महत्या करना उचित है?**

—यह जीवन ब्रह्मांड की देन (अभिव्यक्ति) है। इसके होने में हमारी कोई स्पष्ट भूमिका प्रतीत नहीं होती है। फिर इसे छीनने का हक भी हमें नहीं है। सरदर्द का इलाज सर को काटना नहीं है। तीसरा, जैसाकि हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है कि जीवन है तो संघर्ष होगा। यह तो हमारे जीवित होने का प्रमाण है। आत्महत्या करना कायरता है। धूप-छाया की तरह अच्छे-बुरे दिन आते रहते हैं। इससे भी बुरे दिन पहले आए होंगे। इस बार आप थक गए हैं। अच्छे दिन नहीं रहे तो बुरे दिन भी नहीं रहेंगे। दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ है, जिसको एक बार भी आत्महत्या का विचार न आया हो। अतः यह असामान्य बात नहीं है। यह विचार भी चला जाएगा। आप अपनी अच्छाइयों को देखें।

- **सफलता और सुफलता में क्या अंतर है?**

—सफलता का मतलब है जिंदगी में फल लग गए। सुफलता का मतलब है—जिंदगी में वे फल लग गए जो आनंद देते हैं, जो मीठे हैं, जो अमृत हैं।

आदत-संबंधी प्रश्न

- **आदतों से कैसे निपटें?**

—आदतों को पहचानकर उनके प्रति सजग होकर ही उन्हें बदलना संभव है। आदतों को बदलने में 'न्यूरो-लिंग्विस्टिक प्रोग्रामिंग' एक अच्छी विधि है; जिसके द्वारा हम अपनी आदतों को बदल सकते हैं। इसका विस्तृत विवरण यहाँ राज बापना की पुस्तक 'माइंड पावर स्टडी टेक्नीक' से उद्धृत करता हूँ।

न्यूरो लिंग्विस्टिक प्रोग्रामिंग द्वारा विश्वासों और आदतों को बदलना

इस तकनीक को अमरीका के डॉ. रिचर्ड बैंडलर ने विकसित किया। उन्होंने अपनी इन तकनीकों का नाम 'न्यूरो-लिंग्विस्टिक प्रोगामिंग' रखा। मैंने अमरीका में उनकी सेमीनार में भाग लिया है। डॉ. रिचर्ड बैंडलर की विशेष प्रतिभा यह है कि उन्होंने व्यक्तिगत विकास के लिए नई तकनीकें विकसित की हैं।

उदाहरण के लिए, उनकी एक तकनीक को अकारण भय या फोबिया के इलाज के लिए काम में लिया जाता है। जब सौ वर्ष पूर्व मनोविज्ञान के क्षेत्र का विकास हुआ था, भय के इलाज में पाँच-दस वर्ष् लग जाते थे। फिर कुछ वैज्ञानिकों ने लगभग छह मास में भय दूर करने का तरीका निकाला। अंत में डॉ. रिचर्ड बैंडलर ने ऐसी तकनीक विकसित की, जिससे दो से बीस मिनट में ही अकारण भय से मुक्ति पाई जा सकती है। उन्होंने अपने इस भय-मुक्ति इलाज को हजारों बार प्रदर्शित किया है।

स्विस तकनीक: एक सेमीनार का उदाहरण

इस पुस्तक में दी गई अन्य तकनीकों के समान निम्न तकनीक भी एक शक्तिशाली तकनीक है। अन्य वर्णित तकनीकों के समान यह तकनीक भी आपकी बहुत सहायता कर सकती है। यह तकनीक आपके मस्तिष्क को दिशा देने वाली तकनीक है, जिससे आपके मस्तिष्क का नई दिशा में जाने के लिए नियंत्रण होता है। इस तकनीक को सरल बनाने और आपको याद रखने के लिए मैं इसे एक सरल तरीके से प्रारंभ कर रहा हूँ। बहुत से व्यक्ति 'आदतों के नियंत्रण' में रुचि रखते हैं। यहाँ कौन सा व्यक्ति है, जो आदत स्वरूप अपने नाखूनों को कुतरता है और इस आदत से छुटकारा पाना चाहता है। (एक व्यक्ति जैक मंच पर आना चाहता है)। मैं इस तकनीक का उपयोग जैक पर करना

चाहूँगा, ताकि वह नाखून कुतरने की अपेक्षा कुछ और कर सके।

'आप अपने नाखूनों को कुतरने के पूर्व क्या देखते है? '

जैक—मुझे मालूम नहीं। मुझे तो तब तक यह पता नहीं चलता कि मैं यह कार्य कर रहा हूँ, जब तक कि मुझे नाखून कुतरते हुए कुछ समय न हो जाए।

रिचर्ड—बहुत सी आदतों के लिए यह सही है। आप 'स्वचालित निर्णायक' या 'ऑटोमेटिक पाइलट' हैं। जब इस बारे में कुछ किए जाने हेतु विलंब हो चुका होता है, तभी आपका ध्यान इस तरफ जाता है और तब आपको बुरा लगता है। क्या आपको मालूम है कि आप कब और कहाँ अपने नाखूनों को कुतरना प्रारंभ करते हैं?

जैक—साधारणतः जब मैं पुस्तक पढ़ रहा होता हूँ या फिल्म देख रहा होता हूँ, तभी ऐसा होता है।

रिचर्ड—ठीक है। मैं चाहता हूँ कि आप ठीक वैसी ही कल्पना करें, मानो आप फिल्म देख रहे हैं, और तब अपना हाथ इस प्रकार ऊँचा उठाएँ, मानो आप नाखून कुतरने ही वाले हैं। मैं चाहता हूँ कि आप अपनी नाखून कुतरना प्रारंभ करने वाली स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जो कुछ भी अपने बढ़ते हाथ के आगे देखते हैं, उस पर ध्यान केंद्रित करें।

जैक—ठीक है। अब मैं देख सकता हूँ कि आगे बढ़ता मेरा हाथ कैसा प्रतीत होताहै।

रिचर्ड—बहुत अच्छा। हम इस तसवीर को कुछ मिनट बाद काम में लेंगे। अभी इसे कुछ क्षणों के लिए भूल जाइए। पहले हमें एक दूसरी तसवीर बनाने की आवश्यकता है। जैक, यदि आप अपने नाखून नहीं कुतरें, तब आप अपने आपको कैसे भिन्न देखते हैं? मेरा मतलब है कि इस आदत में परिवर्तन का क्या महत्त्व होगा? आपके जीवन में इसका क्या लाभ होगा? मैं नहीं चाहता कि आप इनके उत्तर मुझे बताएँ। मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं अपने आपको चित्र का निर्माण कर यह बताए कि जब आप इस आदत को नहीं रखेंगे, तब आप कैसे होंगे?

जैक—ठीक है। मैंने उत्तर सोच लिया है।

रिचर्ड—अब मैं चाहता हूँ कि आप अपनी आँखें बंद रखते हुए दिमाग में पहले चित्र पर फिर से ध्यान दें और उससे अधिक विस्तृत और साफ बनाएँ, जिसमें देखें कि आप इस आदत के नहीं रहने पर स्वयं को किस प्रकार भिन्न पाते हैं?

अब मैं आपको वह करने को कहता हूँ, जिसे मैं 'स्विस' कहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप छोटे, धुँधले चित्र को शीघ्रता से इस प्रकार बढ़ा लें कि वह आपके हाथ वाले पुराने चित्र को पूरा ढक ले। धीरे-धीरे पुराना चित्र धुँधला और छोटा होकर विलुप्त हो जाएगा। मैं आपको इसे बहुत तेजी से करते हुए देखना चाहता हूँ, एक सेकेंड से भी कम समय में। जैसे ही आप इन आकृतियों को 'स्विस' कर लें, अपने दिमाग के परदे को पूरा खाली कर दें या अपनी आँखें खोल लें और इधर-उधर देखें। इसके बाद एक बार फिर से इसी क्रिया को दोहराए-बढ़ते हुए हाथ की साफ तसवीर एक कोने में। कुल मिलाकर इस अभ्यास को पाँच बार करें। यह ध्यान रखें कि जब भी आप इसे पूर्ण कर लें, तो दिमाग का परदा पूरी तरह खाली कर दें या अपनी आँखें खोल लें।

हाँ, अब परीक्षण का समय है। जैक! अपने हाथ की बढ़ती हुई उस साफ आकृति की कल्पना करो, और मुझे बताओ कि अब क्या होता है?

जैक—अच्छा। अब इसे वहाँ से पकड़ना कठिन है। यह धुँधली हो जाती है और दूसरी तस्वीर तेजी से उभरकर आती है।

'स्विस' मस्तिष्क को दिशा देता है। मानव में दुःखों से बचने और सुख की तरफ बढ़ने की प्रवृत्ति है।

उस व्यवहार का, जिसे वह पसंद नहीं करता था, एक बड़े साफ चित्र का संकेत देता है। जैसे-जैसे वह तसवीर मंद होकर सिकुड़ती जाती है, दुःख या अरुचि कम होती जाती है। वैसे-वैसे रुचिकर आकृति उभरती और बड़ी होती जाती है, वह उसे आकर्षित करती है।

वस्तुतः यह उसके मस्तिष्क को निर्देश देती है—'जाओ, यहाँ से वहाँ जाओ।' जब आप अपने मस्तिष्क को निर्देश देते हैं, तब आपके व्यवहार की सुदृढ़ प्रवृत्ति उसी दिशा की तरफ जाने की होती है।

जैक! अब मैं तुमसे कुछ और करने के लिए कहता हूँ। तुम अपने हाथ को उसी प्रकार आगे बढ़ाओ, जिस प्रकार तुम नाखून कुतरने के लिए बढ़ाते समय आगे करते हो। (जैक अपना हाथ आगे बढ़ाता है। जैसे ही हाथ मुँह के समीप पहुँचने वाला होता है, वह रुक जाता है और लगभग आधा इंच नीचे की तरफ झुक जाता है।)

अच्छा बताओ, क्या हुआ?

जैक—'मुझे पता नहीं। मेरा हाथ आगे बढ़ा, किंतु यह रुक गया। मैं अपने हाथ को नीचा रखना चाहता था, किंतु मैंने इसे जानबूझकर वहीं स्थिर रखा, क्योंकि आपने ऐसा करने को कहा था।

यह व्यवहार परिवर्तन का परीक्षण है। वह व्यवहार, जो पहले नाखून काटने से संबंधित था, अब किसी अन्य ओर प्रवृत्त है। यह उसी प्रकार संचालित है, जैसा वह पहले करता था। परंतु यह उसे उस नई ओर ले जाता है, जिसे जैक ज्यादा पसंद करता है। यह हमारे अनुभवों में घटित होता है। जैसे ही वह हाथ ऊपर जाता है और वह अनिवार्यता आप में प्रवेश करती है, मात्र इच्छा-शक्ति ही आपको दूसरी तरफ खींच ले जाती है। वास्तव में ऐसा नहीं है कि आप दबाव मुक्त होते हैं। होता यह है कि जिसे आप अधिक पसंद करते हैं, आप उस ओर अधिक प्रेरित हो जाते हैं।

रिचर्ड बैंडलर का कहना है कि उनके द्वारा बनाई गई अन्य तकनीकों की अपेक्षा 'स्विस' तकनीक अधिक प्रभावी है।

- **आप तो लिख देते हैं। असली समस्या उन्हें लागू करने की है, तर्कसंगत सिद्धांतों को भी व्यवहार में उतारने में बड़ी कठिनाई आती है। अमल करने में समस्याएँ हैं।**

—आपका प्रश्न सही है। लेकिन सबसे सरल उपाय पर पहले अमल करें व इस विचार को निकालें कि इन्हें व्यवहार में नहीं उतारा जा सकता है। ये उपाय कई बार फायदा करते हैं। इससे आप बेहतर बनते हैं। इसे ध्यान में रखें; सहज ही उपाय करने लगेंगे।

महिलाओं संबंधी प्रश्न

- **महिलाएँ अपना आत्मविश्वास कैसे बढ़ाएँ?**

  —महिलाओं में प्रायः आत्मविश्वास की कमी होती है। पुरुष-प्रधान सामाजिक ढाँचा महिलाओं को द्वितीय श्रेणी का नागरिक मानता है। स्त्रियाँ स्वयं भी पुरुष-प्रधानता को स्वीकार कर स्वयं को हीन मानती हैं। 'जीत पोथी' बनाएँ, अर्थात् अपनी पचास सफलताओं को लिखें व इक्कीस दिन तक दिन में तीन बार पढ़ें। आत्मविश्वास बढ़ाने व गुप्त संदेशों वाली कैसेट सुनें। महिला सशक्तीकरण संबंधी साहित्य पढ़ें।

- **क्या जीवन का प्रबंधन पुरुष की अपेक्षा महिला बेहतर करती है?**

—मौका मिलने पर महिलाएँ बेहतर प्रबंधक हो सकती हैं। हमारे यहाँ महिलाएँ शुरू से जिम्मेदारी उठाती आई हैं। अतः प्रबंधन बेहतर होता ही है। वैसे यह योग्यता लिंग पर निर्भर नहीं है। यह व्यक्तिगत क्षमता है।

- **नारी पुरुष-प्रधान समाज की गुंडागर्दी का सामना कैसे करे?**

—अपने को मजबूत बनाकर ही महिलाएँ पुरुष-प्रधान समाज का मुकाबला कर सकती हैं।

बच्चों को पालने विषयक प्रश्न

- **जब बच्चे नालायक निकल जाएँ तो क्या करें?**

—जन्म से बच्चे नालायक नहीं होते हैं। उनके लालन-पालन के क्रम में हमारी चूकों से वे फिसले हैं। दूसरी बात अभी तो यह तय करना बड़ा मुश्किल है कि वे नालायक हैं भी या नहीं। यह हमारा पूर्वाग्रह हो सकता है कि वे नालायक हैं, जबकि वास्तव में हम ही नालायक हों। कोई व्यक्ति हमारे आशानुरुप व्यवहार नहीं करता है तो उसे हम नालायक कह देते हैं। अतः सचेत होकर अपना व उनका परीक्षण करें कि कहाँ नालायकी हो रही है। व्यक्ति नालायक नहीं होता, कुछ घटनाएँ यह दरशा सकती हैं। अतः उन घटनाक्रमों में कैसे व कहाँ परिवर्तन किया जाए—जाँच करें व स्वयं को बदलें, ऐसे में उपदेश न देकर अपने में परिवर्तन लाकर उन्हें बदलने हेतु अप्रत्यक्ष संदेश दें।

- **बच्चे कहना न मानें तो उन्हें कैसे समझाएँ?**

—जब बच्चे कहना नहीं मान रहे हों तो इसका स्पष्ट एक अर्थ है कि आपको बच्चे को कहना नहीं आता है या आप ऐसी बात कह रहे हैं, जिसको बच्चा समझ नहीं रहा है। ऐसे में पहले आपको अपना परीक्षण करना चाहिए।

बीमारी विषयक प्रश्न

- **घर में लाइलाज बीमार हो तो उसकी सेवा कैसे करें?**

—घर में लाइलाज बीमारी को स्वीकार कर बेहतर प्रबंधन कर सकते हैं। अनावश्यक प्रतिरोध कर स्वयं की ऊर्जा खर्च न करें। बीमार की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु स्व-संवाद का प्रयोग करें। बीमार का

आत्मविश्वास बढ़ाएँ। परिवार में सकारात्मक माहौल रखें। परिजन की बेहतर चिकित्सा कराएँ। परिणाम हमारे हाथ में नहीं है। कर्म अपने हाथ में है। अपनी तरफ से श्रेष्ठ सेवा करें। होनी को स्वीकार करें। लेखक की कृति 'असाध्य रोगों का सामना कैसे करें' पढ़े।

- **जब बाप को लकवा हो, वह व्यवहार से जिद्दी हों तो उनकी परिचर्या कैसे करें?**

—बूढ़े माँ-बाप की सेवा करना चुनौती है। माँ-बाप द्वारा दबाया बच्चों का मन ऐसे में विद्रोह कर चुका होता है। तब बच्चे उसे टालने की कोशिश करते हैं। लोकनिंदा के भय से बच्चे बेमन से सेवा करते भी हैं। लेकिन इस दौरान उनका मन खट्टा रहता है। ऐसे में उनकी बीमारी को स्वीकार कर उनका प्रबंधन करें। स्वीकार करने के अतिरिक्त सारे मार्ग बेचैनी बढ़ाते हैं। अस्वीकारने का भाव आपके मन में विरोध जगाएगा, जिससे आप अपने से लड़ते रहेंगे। यह आपको थकाएगा एवं निराशा बढ़ाएगा। स्वयं के बुढ़ापे की सुरक्षार्थ अपने बच्चों को प्रशिक्षित कराने का अच्छा मौका मिला है। अतः इस अवसर का इस रूप में उपयोग करें। ऐसा मानकर सच्चे मन से उनकी सेवा करें।

परिवार विषयक प्रश्न

- **जब घर में अव्यवस्था हो, कोईर् किसी का कहना न मानता हो, तो उस घर में अपने सिद्धांत कैसे लागू करें?**

—परिवार प्रबंधन के भाग को पढें व उसमें दिए गए उपायों को अमल में लाएँ। अपनी भूमिका की समीक्षा करें व अपने को बदलकर उदाहरण प्रस्तुत करें। पारिवारिक जीवन में सब साथ बैठकें करें, इसमें सबकी शिकायतें सुनें। इसमें सबसे परिवार में प्रेम, विश्वास पैदा करने के उपाय पूछें। आपकी कुरबानी व्यर्थ नहीं जाएगी। अपने आप से पूछें कि कही इसकी जड़ में आप तो नहीं हैं।

- **जातिगत समाज व्यक्ति का बहिष्कार कर देता है, उसका प्रबंधन कैसे करना चाहिए?**

—मानव-समाज जातिगत समाज से बड़ा सामुदायिक जीवन है। जातिगत समाज मनुष्य को बाँटता है। आप विभाजित मनुष्य न होकर मानव

समुदाय से जुड़े हैं। जातिगत समाज एक सच्चाई है, लेकिन बुराई है। इससे ऊपर उठने का अवसर मिला है, तो इसका लाभ उठाएँ।

- **जब पति शराबी हो जाए, औरत उस अवस्था में क्या करे?**

—पति को शराब के विरुद्ध उपदेश न दें, न उससे नाराज हों। पति के जीवन की रिक्तता को भरें व प्रेम दें। प्रेम से जब आप शराब न छुड़ा सकेंगी तो अन्य उपाय व्यर्थ हैं। अतः सच्चा प्रेम दें एवं न दे सकें तो देने का अभिनय करें। बुराई शराब में नहीं, आपके पति की मनःस्थिति में है। यह बदलकर ही आप जीत सकती हैं। मनोचिकित्सक से उनका इलाज कराएँ।

- **लड़की विजातीय लड़के से प्रेम कर बैठे तब क्या करें?**

—यह बहुत संवेदनशील विषय है। सामाजिक बंधन व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करते हैं। यहाँ पर बेटी की उम्र, उसका विवेक, उसकी समझ पर ध्यान दें। जिस लड़के को पसंद किया गया है, उसकी पृष्ठभूमि, उसकी समझ व उसकी नीयत को भी देखें। लड़के-लड़की का निर्णय कितना परिपक्व है उसको देखें। फिर तदनुसार निर्णय लें। मुश्किल समय में जातिगत समाज मदद को नहीं आता, मदद हमेशा अपने ही करते हैं। परंपरा व समाज के नाम पर लड़की की बलि न दें।

- **पत्नी जब निकृष्ट हो तो उसको कैसे बदलना या उससे कैसे अलग होना चाहिए?**

—पत्नी कुल्टा का क्या प्रमाण है? क्या यह वस्तुगत निर्णय है या व्यक्तिगत? पूर्वाग्रह छोड़ तथ्य देखें। खराब पत्नी का प्रबंधन भी खुद को बदलने से ही जुड़ा है। उसके बदलने की सीमा है तो स्वयं को बदलकर उसे प्रेरित करें। प्रेम से बड़ी परिवर्तनकारी सत्ता जीवन में नहीं है। जब प्रेम से काम न बने तो भय से भी नहीं बना सकते हैं। ऐसे में पुस्तक में आगे बारहवें पाठ में जीवन-साथी के साथ कैसे रहें—पढ़ें व तदनुरूप प्रयत्न करें।

- **आर्थिक स्थिति कमजोर हो तो उस अवस्था में क्या करें?**

—आपकी आर्थिक अवस्था आपके अर्थ-प्रबंधन की नासमझी का परिणाम है। यद्यपि देश की अर्थनीति से जुड़ी हुई है, लेकिन उसको

बदलना एक व्यक्ति के बस में नहीं है। अपनी राह खोजें। अतः 'अर्थ-प्रबंधन' को बार-बार पढ़ें।

- **जो आप उपाय बताते हैं, क्या वे सभी आप अपने जीवन में लागू करते हैं?**

—जहाँ तक संभव हो, मैं अनुभव करके ही लिखता हूँ। लिखने में स्पष्टता, ज्ञान एवं सुसंगति प्रयोग करने पर ही आती है। मैंने अपनी पूरी योग्यता एवं क्षमता का प्रयोग लिखने में किया है। इसका लाभ तो आपकी ग्रहण-शक्ति व आपके जीवन में इनको लागू करने पर निर्भर है।

- **मुझे आपकी कोई बात अच्छी नहीं लगती है। क्या करूँ?**

—जीवन में दूसरा कोई आपसे अच्छा हो भी नहीं सकता है। आप ही धरती के केंद्र में हैं। आपके होने से जगत् है। यह किताब भी आपको ही महत्त्वपूर्ण मानकर कुछ चीजें, तथ्य तथा उपाय आपके साथ बाँट रही है। आप ही जगत् हैं। बात पर नहीं वर्णित उपाय का अभ्यास कर निर्णय करें। बौद्धिक तल से निर्णय करना मन का खेल है। अहं से भरा मन दूसरों की बात नहीं मानता है।

- **क्या पुनर्जन्म होता है?**

—यहाँ प्रश्न का उत्तर महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रश्न के पीछे भाव क्या है। पुनर्जन्म एक सिद्धांत नहीं है। अनुभव की तरह से पूछें तो यह सार्थक है, वरन् यह प्रश्न व्यर्थ है। बुद्धि तर्क द्वारा इसे नहीं समझा जा सकता है।

- **भारत के महापुरुषों में से आप किसे सर्वाधिक श्रेष्ठ मानते हैं?**

—जीवन के हिसाब से एवं पुस्तक के लक्ष्य के अनुसार कृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हुए। क्योंकि कृष्ण एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो संसार में रहते हुए भी संसार में हैं भी और नहीं भी। होश भीतर रखते हुए अपने पात्र को पूर्णता से निभाते हैं। उनके निष्काम कर्म का उपदेश जल में रहते हुए कपड़े नहीं भीगने देने जैसा है। कृष्ण रासलीला भी करते हैं तो पूरी तरह सुदर्शन चक्र भी चलाते हैं। उनकी सभी भूमिकाएँ पूर्ण हैं। कृष्ण सब में होते हुए भी किसी में नहीं थे। उनके पास सब था, फिर भी कुछ नहीं था।

भाग छह
मृत्यु-प्रबंधन

मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। इस सत्य को जानने पर मृत्यु का भय चला जाता है। तब जीवन आनंदमय हो जाता है। मृत्यु का समाधि से क्या संबंध है? क्या मृत्यु का महोत्सव बनाया जा सकता है?

संगठित धर्म व्यक्ति को इनसान नहीं भेड़ बनाते हैं। मनुष्य को बाँटते हैं, उनके कर्मकांडों से बचना जरूरी है। दीर्घ जीवन नहीं, सार्थक जीएँ। मृत्यु से पूर्व जी लो, अन्यथा मृत्यु सबकुछ छीन लेगी। मृत्यु की चिंता उन्हें सताती है जो आज मस्ती से जी नहीं सकते हैं। पूर्णता से जीने वाले को मृत्यु का भय नहीं सताता।

मृत्यु के बाद हमारा क्या होगा? हम साथ क्या ले जा सकते हैं, क्या इस जगत् के पार भी कुछ है? परलोक में साथ क्या ले जाना? क्या देह विघटित होने के बाद भी कुछ बचता है? इसका संरक्षण कैसे करें व ऐसा कैसे जीएँ कि मरने पर भी साथ आएँ? अध्यात्म की राह क्या है व कैसे जीना है? इन गूढ़ प्रश्नों के उत्तर मौत का सामना करने में सहायक हैं।

अतिक्ति पाठ्य सामग्री

ओशो—मैं मृत्यु सिखाता हूँ

स्वामी अभेदानंद—मृत्यु के पार

परमहंस योगानंद—एक योगी की आत्मकथा

Deepak Chopra—Life After Death

Raymond Moody—Life After Life

19

मृत्यु का सामना कैसे करें?

> *"जीवन की सबसे बड़ी क्षति मृत्यु नहीं है। सबसे बड़ी क्षति तो वह है जो तत्समय नहीं जीने से हमारे अंदर ही मरती जाती है?"*
>
> *—नार्मन कजिन*

मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। यह जीवन प्रक्रिया का एक अंग है। यह एक दूसरा द्वार है।

जन्म का दूसरा किनारा मृत्यु है। आत्मा वस्तु नहीं, एक प्रक्रिया है, जो निरंतर विकसित होती है।

मृत्यु का समय, स्थान व कारण अज्ञात है। यह कभी भी किसी को भी आ सकती है। साथ में कुछ ले नहीं जा सकते। यह आनी भी निश्चित है, इससे बचने का कोई उपाय नहीं है, फिर आप उसके लिए सदैव तैयार क्यों नहीं रहते हैं? फिर उसे भूल क्यों जाते हैं?

मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है। यह सहज आती है। अव्यक्त परमाणुओं को धारण करनेवाला व्यक्त ढाँचा शरीर है। शरीर तो चक्रपूर्ण जलस्रोत के समान ही है। जिस तरह हम एक दुर्घटना से जनमे हैं, उसी तरह दूसरी दुर्घटना से शरीर छोड़ देंगे।

विज्ञान ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत स्वीकारता है कि पदार्थ-ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होती है। मात्र उसका रूप-परिवर्तन होता है। मृत्यु इंद्रियों का भ्रम है। चेतना अपने विकास के पथ पर निरंतर आगे बढ़ती हुई नित्य है।

जन्म और मृत्यु की घटना के बीच जीवन होता है। जीवन को आनंद से जी लेने पर मृत्यु कोई समस्या नहीं रहती है। आनंद से नहीं जीनेवाले मृत्यु का सामना सरलता से नहीं कर सकते हैं। जीना सातत्य है, जो स्मृति के माध्यम से होता है। जीवन से हमारा अभिप्राय निरंतरता से है, जिसमें तादात्म्य होता है। इसके विपरीत, मृत्यु कोई विशेष घटना नहीं है; यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शरीर में उत्पाद-व्यय निरंतर चलता रहता है। वास्तव में नए कोषों का बनना जन्म है; तो पुराने कोषों का मिटना मृत्यु है। श्वास का आना जन्म है, तो श्वास का

जाना मृत्यु है। जीवन और मृत्यु के बीच कोई विभाजन-रेखा नहीं है। मृत्यु की समस्या जीवन की ही समस्या का विस्तार है।

मृत्यु प्रक्रिया

मृत्यु से ठीक पहले मनुष्य की आत्मा समस्त इंद्रियों से प्राण शक्ति को धीरे-धीरे खींच लेती है। जैसे दीपक बुझने से पहले धीरे-धीरे निष्प्रभ होने लगता है, वैस ही मनुष्य की इंद्रिया क्षीण होती जाती हैं। तब दीपक बुझने के समान ही प्राणशक्ति स्तब्ध हो जाती है। तत् समय वह शक्ति तीक्ष्ण और सतेज हो जाती है। प्राणशक्ति के शरीर छोड़ने से ठीक पूर्व मनुष्य अचेतन हो जाता है। उसी अवस्था में प्राणशक्ति कुहासा रुप में शरीर से विलग हो जाती है। मृत्यु के समय इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप प्रसिद्ध लेखक हैं। क्या बड़े अधिकारी होने से मृत्यु के समय फर्क पड़ता है? आपके ऊँचे रसूकात भी मृत्यु के समय काम नहीं आते हैं। पृथ्वी से अलगई अकेले ही होती है। साथ में रुपया, मकान, पद, परिजन आदि नहीं आते हैं।

ओशो ने भी बताया है कि मृत्यु पर रोने-धोने की जरूरत नहीं है। मृत्यु के बाद चौबीस घंटे तक सूक्ष्म शरीर अपने पुराने घर के आस-पास घूमता है। रोने से, चिंतातुर रहने से जानेवाली आत्मा को कष्ट होता है। अतः उसे हँसकर व प्रेम से अलग करना चाहिए।

समस्या मृत्यु की नहीं भय की है

प्रत्येक जन्म लेने वाला मरता है। शारीरिक मृत्यु अनिवार्य है, प्राकृतिक है। परेशानी कायिक मृत्यु की कम, मृत्यु के भय की अधिक है। हम मनोवैज्ञानिक रुप से मृत्यु के भय से प्रभावित एवं परिचालित होते हैं। जीवन में सबसे बड़ा भय मृत्यु का होता है, अतः समस्या मृत्यु के भय से मुक्त होने की है। मौत का साया जो प्रतिक्षण जीवन में विष घोलता है, वही समस्या है; अतः मुख्य प्रश्न मृत्यु के भय से मुकाबले का है।

मानसिक भय का निदान करने से पूर्व हमें समझना होगा कि डर का जन्म कहाँ से होता है एवं डर को बढ़ाने में कौन से कारक सहायक हैं; इसका विश्लेषण करना पड़ेगा। मननशील व्यक्ति ने बाह्य जगत् में होनेवाले परिवर्तनों, आपदाओं, बीमारियों एवं अकाल मौतों को देखकर अनुमान लगाया कि उसे भी एक दिन मरना पड़ेगा। यहीं से व्यक्ति फँदे में आ जाता है।

विचार द्वारा उत्पन्न भय का सामना भी व्यक्ति विचार द्वारा ही करता है। प्रथमतः विचार ही समस्या को प्रकट करता है, फिर वही समाधान के उपाय करता है। वह शरीर की सुरक्षार्थ रोटी, कपड़ा, मकान पर ध्यान देता है। साथ ही अकेला स्वयं को अधिक असुरक्षित अनुभव करता है, तो समूह में रहना पसंद करता है।

मानव-सभ्यता के चरण ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए, त्यों-त्यों भौतिक उन्नति होती गई, लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से 'भय' की समस्या बनी रही। इस विकास-यात्रा के क्रम में परिवार, धर्म, गाँव, समाज, जातिवाद, शहर, क्षेत्रीयतावाद एवं राष्ट्रवाद बने।

विज्ञान ने उपभोक्तावाद को जन्म दिया। अनेक उत्थान-पतन होते रहे; लेकिन 'मृत्यु का भय' मनुष्य को नचाता रहा। अनेक महापुरुष हुए, अनेक धर्म बने, नाना धारणाएँ बनीं। महावीर और बुद्ध जैसे मनीषियों ने मृत्यु-भय को जीता; लेकिन उनकी व्यक्तिगत जीत से समाज में पंथ बने, पाखंड पनपे एवं भय का प्रश्न सुलगता रहा; अर्थात् ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज बढ़ता गया।

हमारी सबसे बड़ी गलत धारणा यह है कि आत्मा शरीर में वास करती है। आत्मा तो शरीर के रूप में व्यक्त होती है। अर्थात् आत्मा ने शरीर को धारण किया है। शरीर पहले नहीं आया, उसकी ताकत नहीं है कि वह उसमें आत्मा को रखे। आत्मा शाश्वत है, नित्य है। लोग कहते हैं—'यह व्यक्ति मर गया और उसकी आत्मा उसे छोड़ गई', लेकिन यह सच नहीं है। आत्मा शरीर के भीतर नहीं रहती। आत्मा खुद को शरीर और मन के रूप में प्रक्षेपित करती है। यह एक स्थान पा लेती है और खुद को शरीर के माध्यम से दृश्य-श्रव्य रूप में प्रसारित करती है। लेकिन जिस तरह से पात्र हमारे टेलीविजन सेट के भीतर नहीं होते और लता मंगेशकर के गाते समय लताजी रेडियो में नहीं होतीं, उसी तरह आत्मा भी शरीर के भीतर नहीं होती, अभिव्यक्त होती है। मेरी आत्मा तो मेरे माध्यम से या मेरे शरीर के माध्यम से स्थान पाती है या स्वयं को अभिव्यक्त करती है। जो इस क्षेत्र व समय में व्यक्त हो रही है।

मृत्यु का सामना करने के उपाय

1. परंपरागत धार्मिक मार्ग

मृत्यु के भय का सामना करने के उपक्रम में धर्म-गुरुओं ने आत्मा की धारणा, पुनर्जन्म का सिद्धांत एवं मोक्ष की खोज की है। यह सब मन के प्रक्षेपण (उत्पाद) हैं। तभी तो जिज्ञासु होकर भी व्यक्ति मूर्च्छा में डूबता है। कैसी विडंबना है कि आत्मा की शाश्वतता की घोषणा करनेवाला मृत्यु से डरता है।

सिद्धांत रूप में स्वयं को अजर-अमर घोषित करने वाला साँप देखकर भाग खड़ा होता है अर्थात् सूचनात्मक ज्ञान के होने से व्यक्ति रूपांतरित नहीं होता है। चूँकि व्यक्ति का अनुभव मृत्यु को देखने का होता है। हमें प्रतिपल परिवर्तन का अनुभवात्मक ज्ञान होता है। अतः हमें सूचनात्मक ज्ञान पर भरोसा नहीं होता है। इस प्रकार हमारे मन में दोनों प्रकार के ज्ञानों की रस्साकशी चलती है और व्यक्ति पिसता जाता है। जीवन में इस प्रकार का द्वंद्व ही दुःख हैं।

मृत्यु के भय का सामना करने के लिए महामृत्युंजय जाप करें। जाप भी स्व-संवाद की पुरानी विधि है। स्वयं न जपना चाहे तो इनकी सी.डी. व कैसेट सुनें। सुनते वक्त इस पर पूरा ध्यान दें।

हम जीवन और मृत्यु के बीच किसी व्याख्या से, किसी पारलौकिक सातत्य में विश्वास से इन दोनों के बीच की खाई को पाटना चाहते हैं, जो पलायन है। हम ज्ञात की परिणति हैं और अज्ञात (मृत्यु) को जानना चाहते हैं। यही संघर्ष है। रुपी शरीर पर होने वाली संवेदनाओं से अनभिज्ञ अरूपी चेतना को उसके बहुविध आयाम में कैसे जानें—इस प्रकार सोचें।

2. मृत्यृ को स्वीकारें

जो चीज अवश्यंभावी है, उसका भय क्यों? हम होनी को क्यों नहीं स्वीकारते? मृत्यु का जो दरिया हम प्रतिपल पार कर रहे हैं, उसका अवलोकन नहीं कर हम समस्या का सामना विचारों द्वारा (पलायन) करते हैं? क्या बर्फ पिघलने से डरती है? क्या पेड़ सूखने से डरता है या उसका विरोध करता है? क्या बहती नदी अपना मार्ग बनाने में दिमाग लगाती है? क्या वह अपने तटों का निर्माण करती है? नहीं; तो फिर मनुष्य वैसा क्यों करता है? वस्तुतः तर्कों से भय-मुक्ति संभव नहीं है।

मृत्यु का सामना मंत्रोच्चारण, पूजा-अर्चना, सिद्धांतों, पद्धतियों, अनुकरणों द्वारा नहीं किया जा सकता। मौत जीवन-रुपी सिक्के का दूसरा पक्ष है। यह जीवन से परे नहीं है। जीवन की पहेली जो बूझ लेते हैं, उनके लिए मृत्यु रहस्य नहीं रहती। जब तक जीवन समस्या है, तब तक मृत्यु की समस्या विद्यमान है। मौत जीवन की समस्या का ही विस्तार है। जीवन जन्म और मृत्यु के बीच का जोड़ है। मृत्यु कोई समस्या नहीं है, यह एक स्वाभाविक परिणाति है। बनना व बिगड़ना पदार्थ की पहचान है। बननेवाला पदार्थ विघटित होता है। हम इस प्रक्रिया के प्रति सोए हुए हैं। मृत्यु हमसे बाहर नहीं है। यह कोई कल्पना नहीं है, निरंतर प्रक्रिया है, इस जीवन का यथार्थ है। हम विचारों में, कषायों में एवं सपनों में डूबे रहने के कारण यथार्थ से अवगत नहीं होते हैं और ठोस शरीर को ही यथार्थ मान लेते

हैं। इस पर होनेवाले जैव-वैद्युत एवं भीतर होने वाली जैव-रासायनिक क्रियाओं के दर्शन नहीं कर पाते हैं। यही मूर्च्छा है।

हम अनेक बंधनों में जकड़े हुए हैं। इच्छाओं, वासनाओं, कामनाओं के जाल में फँसे हुए हैं अर्थात् हम 'स्व' को नहीं जानते; अतः सहज नहीं रहते। सदैव कुछ बनने की प्रक्रिया के शिकार हो जाते हैं। अतीत और भविष्य की बेड़ियों में बंद रहते हैं। जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में खो जाते हैं। सिद्धि के प्रयोजन में विचारों को दबाते, उठाते एवं रूपांतरित करते रहते हैं। इस उत्पात में हम स्वयं को भूल जाते हैं एवं प्रमादवश बहते रहते हैं। पदार्थ, समय एवं आकाश जो कि निरपेक्ष है, उनका तादात्म्यीकरण कर हम उसमें लोट लगाते रहते हैं। इनका व्यक्तिकरण एवं नामकरण कर हम उसमें फँस जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान गुण अपने को छोड़ अन्य क्षेत्रों में विचरण करने लगता है, फलस्वरूप हम स्वयं को जान नहीं पाते हैं। ज्ञान गुण को पर में विचरते देख हमारा अहं उससे निजता स्थापित कर लेता है। यद्यपि यह काल्पनिक होती है; तथापि यह प्रतिबद्धता छूटे तभी अवलोकन की क्षमता प्रकट हो सकती है, अतः समस्या बनी रहती है।

वास्तव में मृत्यु का भय अपने आप में कोई उलझन नहीं है। मृत्यु जीवन का ही दूसरा तट है। जो प्रथम तट को समझता है, उसके लिए मृत्यु का भय स्वतः ही समाप्त हो जाता है। प्रतिबद्धतापूर्ण जीवन, इच्छाओं एवं आकुलता भरा जीवन असली समस्या है। सजगता द्वारा जो अपने तन-मन-धन में उठती प्रत्येक तरंग, कंपन एवं विचार को तटस्थता से जान लेता है, वह वर्तमान में जीता हुआ अपनी समस्त उलझनों को मिटा देता है। अतीत और भविष्य, काल और क्षेत्र से ऊपर उठ जाता है; यानी सहज ज्ञाता-दृष्टा बन जाता है।

महर्षि रमन एवं रामकृष्ण ने कैंसर को स्वीकारा। काया का इलाज कराना उचित नहीं समझा। जे. कृष्णमूर्ति अपने पित्ताशय का कैंसर होने पर अस्पताल से घर आ गए। शांति व प्रेम से शरीर को अलग किया।

3. क्षण-प्रतिक्षण सजग बनें

प्रतिक्षण सजगता के साथ अवलोकन से मन में उठते विकल्प स्वतः शांत हो जाते हैं, समस्याएँ विसर्जित हो जाती हैं, तनाव लुप्त हो जाते हैं, भय स्वतः मिट जाते हैं। चूँकि सीमित मन असीम का अनुभव कर लेता है, अतः ज्ञात मन स्वतः ही 'अज्ञात' को जानने लगता है। व्यक्ति असमय एवं अनंत हो जाता है। ऐसे में मौत का सामना करने की समस्या लुप्त हो जाती है। पाने की इच्छा के विसर्जन के साथ ही खोने का प्रश्न मिट जाता है, प्रमाद जीवन की समस्या है और सजगता उसका समाधान।

हम ब्रह्मांड के उस परम तत्त्व के बने हुए हैं, जो कभी नष्ट नहीं होता है। शाश्वत है, नित्य है, फिर वह समाप्त कैसे हो सकता है। हाँ। उसका जो रुप था, वो परिवर्तित हो जाता है। वैसे हमारी देह में क्षण-प्रतिक्षण अरबों अणु बदलते हैं। फिर भी हमारी उपस्थिति बनी रहती है। दो कोशिकाओं के संयोग से सौ खरब कोशिकाएँ इस शरीर में बन जाती हैं, जिनमें सबमें संगठन है, कार्य का विभाजन है, नियमितता है। उन सबका नियोजन कोई मेधा करती है। फिर डरने की क्या जरूरत है। यह रूप जाएगा तो कोई नया रूप मिलेगा। यह शरीर छूटेगा तो कोई नया शरीर मिलेगा। यह सब अवलोकन का क्षेत्र है। इसके प्रति सजग होने व सजग रहने का क्षेत्र है। विचार द्वारा मृत्यु का सामना नहीं किया जा सकता है, न ही करना है।

सुकरात को जहर पिलाया गया था तब उन्होंने शांतिपूर्वक देह के शांत होने को देखा था। मृत्यु के समय सबसे श्रेष्ठ यही दृष्टि है।

हम अवलोकन द्वारा समग्र सत्ता से जुड़ने पर अनंत हो जाते हैं। तब पता लगता है कि हमारा जन्म ही नहीं हुआ था तो फिर मृत्यु कैसे हो सकती है। अर्थात् यहाँ मरता कुछ नहीं, रुपांतरण होता है।

बारदो-सजग मृत्यु की तिब्बती विधि

तिब्बत में मृत्यु पर बहुत काम हुआ है। वहाँ सजगता से शरीर छूटे इस हेतु मठ में पूरी व्यवस्था है। मरने वालों को चारों ओर से रिश्तेदार, मित्र व साधु घेर लेते हैं। मरने वाले के सामाजिक सम्मोहन को तोड़ने हेतु बार-बार निर्देश देते रहते हैं कि तुम कभी मर नहीं सकते हो। शरीर मात्र शिथिल हो रहा है, जिसे देखो। तुम यह शरीर नहीं हो। इससे ज्यादा शक्तिशाली, शाश्वत सत्य हो। पहले तुम भी कभी मरे नहीं हो। मृत्यु एक झूठ है। तुम अगली यात्रा पर निकलने वाले हो। यहाँ कुछ छूटेगा नहीं। तुम इस देह से भिन्न हो। देह से निकलने पर भी किसी तरह कम नहीं होओगे।

इस तरह बार-बार सुनकर वह होश में देह छोड़ता है, तो उसे अगले जन्म के समय भी होश रहता है।

जैन दर्शन में मृत्यु को महोत्सव बताया गया है। अंतिम विदाई को सार्थक बनाने हेतु जैन दर्शन में संथारा का विधान है। जब शरीर अंतिम समय में साथ न दे तो संकल्प द्वारा धीरे-धीरे भोजन व जल त्यागने का विधान है। इस तरह समाधि की तरफ बढ़ा जाता है। मरते वक्त के भाव अगले जन्म में जाते हैं। इसलिए

अंतिम समय में सकारात्मक रहें, इसीलिए अंतिम समय में ईश्वर-स्मरण, गंगा-जल व तुलसी-पत्र दिए जाते हैं।

मरते समय आदमी वहीं पाता है, जहाँ वह जनमा था। ठीक उसी किनारे पर जहाँ आँख खोली थीं, आँख बंद करते समय आदमी पाता है कि वहीं खड़ा हूँ। और तब बड़ी हैरानी होती है कि जीवन भर जो दौड़-धूप की थी, उसका क्या हुआ। वह जो श्रम किया था—कहीं पहुँचने को, वह जो यात्रा की थी, सब निष्फल गई। मृत्यु-क्षण में आदमी अपने को वहीं पाता है, जहाँ जन्म के क्षण में था। तब सारा जीवन एक सपना मालूम पड़ने लगता है।

प्रत्येक मृत्यु रचनात्मकता की नई छलाँग के अवसर लेकर आती है। मौत के माध्यम से हम हर स्तर पर अपना पुनर्सृजन करते हैं—शरीर-मन के पदार्थ के स्तर पर, बुद्धि और व्यक्तित्व के स्तर पर। हमारे पुनर्सृजन के लिए इन सबको पहले मरना पड़ता है। प्रत्येक मौत के साथ हम समय के आरंभ से प्राप्त अपने अनुभवों की जमा पूँजी और रचनात्मकता की ऊर्जा को ऐसे देखते हैं, जैसे पहली बार देख रहे हैं। जन्म, मृत्यु और रूपांतरण का यह चक्र हमें हमेशा तरोताजा रखता है, ताकि हम अपने अस्तित्व के नए क्षेत्रों की कल्पना कर सकें।

सार

जब आप मर जाते हैं, तो आप कहीं नहीं जाते। बस आपकी आत्मा किसी दूसरी आवृत्ति में प्रकंपित होती है।

सबकुछ बदल रहा है, फिर भी कुछ भी मरता नहीं है। जिस तरह जीवन में स्वरूप बदलते हैं, उसी प्रकार मृत्यु के दौरान स्वरूप बदलते हैं।

जब आपका शाश्वत परमात्मा से, जो चेतना का सार तत्त्व है, तादात्म्य स्थापित होगा, तब आप सभी दुःखों और मृत्यु के भय तक से मुक्त हो जाते है।

20

परलोक-विज्ञान

परलोक का अस्तित्व

"स्वर्ग एवं नरक मानव मन की ही विभिन्न अवस्थाएँ हैं, बाहर उनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। अज्ञान अवस्था में ही उनकी स्वतंत्र अवस्था प्रतीत होती है। परम सत्य की उपलब्धि पर जन्म-मृत्यु कुछ नहीं रहता है।"

—स्वामी अभेदानंद

मरने के बाद कहाँ जाते हैं

मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। मृत्यु पर देह से जो भी ऊर्जा, तरंग, कंपन, सार, चैतन्य, सूक्ष्म शरीर, जो भी नाम दें, कुछ अलग हो जाता है। एक वैज्ञानिक प्रयोग में मृत्यु पर इक्कीस ग्राम वजन का घटना व ज्योति समान कुछ निकलने के फोटोग्राफ खींचे गए हैं।

अलग हुई वस्तु जहाँ जाती है, उसे परलोक कहा जाता है। परलोक इस लोक की तरह स्थूल एवं भौतिक नहीं होता है। धर्म शास्त्रों में उपलब्ध वर्णन के अनुसार यह आकाश में कही नहीं है। यह हमें आँखों से नहीं दिखाई देता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह किसी अन्य रूप में भी नहीं है।

दृश्य पदार्थ की तीन अवस्थाएँ ठोस, द्रव एवं गैस होती हैं। यह सब दृश्य पदार्थ के लिए है। हमारी पाँचों इंद्रियों द्वारा ग्रहित द्रव्य के लिए है। जैसाकि प्रकाश की तरंगें मात्र दृश्य-क्षेत्र में आनेवाली ही नहीं हैं, उसके पार भी हैं, जिन्हें इंफा एवं अल्ट्रावायलेट कहते हैं। उसी प्रकार जगत् के समस्त पदार्थ हमारी पाँच इंद्रियों की पकड़ में नहीं हैं, जिन्हें सूक्ष्म जगत् कहते हैं। धर्म जगत् में जो वर्णन परलोक का आता है वह सूक्ष्म जगत् ही है। वास्तव में यह कहीं भूमंडल में अन्य ग्रह पर ठोस रूप में नहीं है। यह सर्वत्र व्याप्त है, जो सूक्ष्म है, अदृश्य है। यह सब मानसिक है। यह कोई क्षेत्र विशेष नहीं है।

आइंस्टीन के बाद विज्ञान स्वयं कहता है कि पदार्थ कभी भी नष्ट नहीं होता है। उसका रूप परिवर्तन होता है या वह ऊर्जा में रूपांतरित हो सकता है, जिसका प्रसिद्ध सूत्र $E= MC^2$ है। मृत्यु के बाद शरीर तो पृथ्वी पर पड़ा रहता है, लेकिन उसको चलाने वाली ऊर्जा शक्ति आत्मा चेतना-नाम कुछ भी हो, वह नहीं रहती है। वह मृत्यु के पूर्व शरीर को क्रियाशील बनाए हुए थी। अचानक वह कहाँ

चली गई? विज्ञान के अनुसार, ऊर्जा नष्ट नहीं होती है, मात्र उसका रूप परिवर्तन संभव है। इसका मतलब यह हुआ कि हमारी मृत्यु पर कोई ऊर्जा जो शरीर को छोड़ देती है, वह अन्यत्र चली जाती है। वह जहाँ जाकर रहती है, उसे परलोक कहते हैं।

लेकिन जगत् इन इंद्रियों की संवेदन क्षमता के पार भी है। परलोक का वर्णन प्रत्येक धर्म ने अलग प्रकार से किया है। लेकिन मुख्य बातें सभी में समान हैं। यह दो तरह का होता है। अच्छे लोगों हेतु जहाँ उन्हें सुख मिलता है, जिसे धर्म की भाषा में स्वर्ग कहते हैं, व दूसरा बुरे लोगों के लिए जहाँ उन्हें कष्ट मिलते हैं, उसे नरक कहते हैं। यह सूक्ष्म जगत् है, जीवित व्यक्ति इसका अनुभव नहीं कर सकता है। ये कहीं साकार रूप में नहीं हैं। यहाँ से कुछ समय बाद सूक्ष्म शरीर को पुनः जाना पड़ता है। वह नया जन्म लेता है।

परलोक पर पहली बार वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन थियोसॉफिकल समाज ने किया है। मैडम ब्लाट्सवस्की, कर्नल अल्काट व ऐनी बेसेंट ने बहुत काम किया है।

हमारे सात शरीर

थियोसॉफी ने सात तरह के शरीर बताएँ हैं। पहला भौतिक शरीर, जो स्थूल होता है, जिसे अन्नमय कोष कहते हैं। यह शरीर अन्न से निर्मित होता है। हमारे आहार से इसका निर्माण होता है। हर सात साल में एक शरीर का विकास होता है। यह सात वर्ष में विकसित हो जाता है।

इसके बाद दूसरा भाव-शरीर होता है, जो हमारी प्राण ऊर्जा से बनता है। जो श्वास हम लेते हैं, उससे उसका निर्माण होता है, उसे प्राणमय कोष कहते हैं। यह शरीर हमारी भावनाओं से बनता है। अगर किसी बच्चे में चौदह साल तक सेक्स का विकास न हो पाए तो अब उसकी पूरी जिंदगी मुसीबत में बीतने की संभावना होगी।

तीसरा शरीर एस्ट्रल बॉडी है, जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह मनोमय-कोष से बना होता है। इस शरीर का निर्माण हमारे विचारों से होता है। तीसरा शरीर विचार, बुद्धि व तर्क से जुड़ा होता है। इसके विकसित होने पर व्यक्ति बुद्धिमान बनता है। इनके अनुसार सूक्ष्म जगत् वास्तव में विद्युत चुंबकीय क्षेत्र है व सूक्ष्म सत्ता इसमें वास करती है।

मेंटल बॉडी चौथा शरीर है। यह शरीर हमारे ध्यान करने से बनता है। तो ध्यान चौथे शरीर को बनाने की व्यवस्था है। इस शरीर को विज्ञानमय शरीर भी कहते

हैं। यह विज्ञानमय कोष से बना होता है। इसके विकसित होने पर अतींद्रिय शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। सम्मोहन, टेलीपैथी, क्लेअर वाइस, सूक्ष्म शरीर बॉडी आदि का विकास इस शरीर की देन है। यह साइकिक बॉडी है। योग, सिद्धियाँ, चक्र का विकास इससे संबंधित है। उपरोक्त चारों शरीरों के विकास के बिना विवाह असफल हो जाता है, क्योंकि वह अपने भीतर के विपरीत लिंग को खोज रहा होता है। जैसाकि स्त्री का भौतिक शरीर अपने दूसरे भाव शरीर, जो पुरुष का होता है, खोजता रहता है। अगर कहीं तालमेल बैठ जाता है तो वह तृप्त हो जाता है, अन्यथा अतृप्ति बनी रहती है।

पाँचवाँ अध्यात्म शरीर है। उपनिषद् की भाषा में इसे आनंदमय कोष कहते हैं। जब कोई ध्यान द्वारा चौथे शरीर को शुद्ध कर लेता है तो इस शरीर का निर्माण होता है, जो सबसे पारदर्शी होता है। अगर ठीक से जीवन का विकास हो तो यह पैंतीस वर्ष की उम्र होने पर विकसित होता है। चौथे शरीर में कुंडली जगे तभी पाँचवें शरीर का विकास हो सकता है।

छठा ब्रह्म शरीर है, जो कासिंक बॉडी है। जब कोई आत्मा को विकसित कर ले और उसको खोने को राजी हो तो व छठे शरीर में प्रवेश करता है। यहाँ पर अहम् ब्रह्मास्मि—मैं ही ईश्वर हूँ—का बोध होता है। यहाँ विराट की अनुभव होता है।

सातवाँ बॉडीलेस बॉडी है। यह निर्वाण काया है। वह उन पचास वर्ष की आयु तक हो जाना चाहिए। यह कोई शरीर नहीं है। यह परम है, शून्य है। यहाँ पर सब मिट जाता है; कुछ नहीं रहता है।

तंत्र की भाषा में सातों शरीर हमारे शरीर के सात चक्रों से संबंधित हैं। भौतिक शरीर का संबंध मूलाधार चक्र से है। इसकी प्राकृतिक संभावना काम-वासना की है। दूसरी संभावना ब्रह्मचर्य साधना की है। काम इसकी प्राकृतिक संभावना है और ब्रह्मचर्य इसका रूपांतरण है।

स्वाधिष्ठान चक्र दूसरे भाव शरीर से संबंधित है। इसकी प्राकृतिक संभावना भय, घृणा, क्रोध, हिंसा है। इसी ऊर्जा का साधना से प्रेम-करुणा एवं मैत्री में विकास होता है। तीसरा शरीर मणिपुर चक्र से संबंधित है। प्राथमिक रूप से सूक्ष्म शरीर संदेह, विचार इसके आस-पास रुका रहता है। रूपांतरित होकर संदेह-श्रद्धा एवं विचार-विवेक बन जाता है। अनाहत चक्र मेंटल बॉड़ी से संबंधित है। इसका प्राकृतिक रुप कल्पना और स्वप्न है। साधना द्वारा कल्पना, संकल्प एवं स्वप्न को विजन बनाया जा सकता है।

पाँचवें शरीर में, जो विशुद्ध चक्र से जुड़ा होता है, द्वैत नहीं होता है। चार शरीरों तक स्त्री-पुरुष का विभाजन है, पाँचवाँ शरीरसेक्स से परे है। इस शरीर के विकसित होने पर मूर्च्छा टूट जाती है एवं व्यक्ति सजग हो जाता है।

छठा शरीर आज्ञा-चक्र से संबंधित है। इसमें 'जो है' अर्थात् 'ऐसा है' का बोध रह जाता है।

सातवाँ शरीर सहस्रार से संबंधित है। यहाँ आकर शून्य हो जाता है।

इनका विस्तृत वर्णन ओशो ने 'जिन खोजा तिन पाइया' पुस्तक में किया है।

परलोक के प्रमाण

मरकर लौटने वाले क्या कहते हैं?

लोग पुनर्जन्म की धाराणाएँ एवं मृत्यु निकट के अनुभव से परलोक को प्रमाणित करते हैं। रेमंड मूडी ने सौ से ज्यादा लोगों से, जिन्हें 'चिकित्सकीय तौर पर मृत' घोषित किया था, लेकिन जिन्हें बाद में बचा लिया गया था, से छानबीन की है। इन सबका वर्णन 'जीवन के बाद जीवन' नामक कृति में उपलब्ध है। इन सब लोगों ने परलोक किसी-न-किसी रूप में स्वीकारा है। परमहंस योगानंदजी की जीवनी में परलोक संबंधी अनेक उदारहण मिलते हैं। वे अपने गुरुओं के सूक्ष्म रूपों से मिलकर निर्देश प्राप्त करते रहे हैं। वस्तुतः 'सर्वसार उपनिषद्' में इन शरीरों को कोष कहा गया है। इसमें पाँच कोष बताएँ गए हैं। ये हमारे शरीर की परतें हैं। अंतिम दोनों शरीर के बारे में उपनिषद् मौन है। क्योंकि उनका व्यक्तिगत अस्तित्व इस प्रकार नहीं होता है।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों के अनुसार हम भृकुटी पर ध्यान कर अपने आज्ञाचक्र को जगा कर परलोक को महसूस सकते हैं। तिब्बती लामा श्री लोबसांग राम्पा ने अपनी पुस्तक 'थर्ड आई' में इसका विस्तृत वर्णन किया है।

वैसे यह ज्ञान इंद्रीयातीत है, इसलिए इसका आपको अनुभव नहीं हो सकता है। आप इसको पढ़कर कोई निर्णय नहीं कर पाएँगे। उलटा आपका भ्रम बढ़ेगा, इसलिए मैं ज्यादा नहीं लिखना चाहता हूँ। क्योंकि ठोस रूप में वैज्ञानिक प्रयोगों के साथ कुछ भी प्रमाणित करना कठिन है। यह एक अलग पूरी पुस्तक का विषय है। यहाँ पर मैं वही लिखना चाहता हूँ, जो आपके जीवन-प्रबंधन में सहायक व जरूरी है। शेष अन्यथा बातें बता कर आपको संशय में नहीं डालना चाहता हूँ।

मृत्यु शरीर की होती है। कोई भी पदार्थ मृत्यु के समय साथ नहीं जाता है। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह सूक्ष्म लोक है जो इंद्रीयातीत है। सूक्ष्म शरीर मृत्यु पर बना रहता है। सूक्ष्म शरीर पंचप्राण, पाँच कर्मेंद्रिय व पाँच ज्ञानेंद्रिय, मन-बुद्धि एवं शांति इन सत्रह उपादानों से निर्मित होता है। वह जड़ नहीं होता है। इस सूक्ष्म शरीर में संस्कार संचित होते हैं और वे मृत्यु पर व्यक्ति के साथ जाते हैं। वे व्यक्ति के अगले जन्म में बीज का कार्य करते है। उचित वातावरण में पुनः सक्रिय होते हैं।

(मुझे परलोक की स्मृति नहीं है। यहाँ पर जो वर्णन करता हूँ, वह हमारे ऋषियों एवं संतों ने बताया है। इसके साथ ही आधुनिक परा मनोविज्ञान ने जो खोजें की हैं, वही मेरा आधार है। इसलिए यह सब वर्णन मानसिक एवं सांकेतिक है। इसका तल उतना ही माने। यह रहस्य लोक है। मैं तो मात्र इसका संकेत कर रहा हूँ। निश्चित रूप से कुछ भी कहना बहुत कठिन है। आप इन इशारों से बात को समझने का प्रयास करें, यहीं निवेदन है।)

भाग सात
चेतना-प्रबंधन

जीवन का आधार सूक्ष्म, अदृश्य व अरूपी है। रूपी का प्रबंधन सरल होता है, अरूपी का प्रबंधन सबसे बड़ी चुनौती होती है। लेकिन विगत पाँच हजार वर्षों से अनेक मनीषियों ने इन पर काम किया है। उनके अनुसार अदृश्य व सूक्ष्म का प्रबंधन सबसे जरूरी है। अनुभवों के प्रकाश में आगे बढ़ते हुए अज्ञात को जानना ही, उसका साक्षी होना ही चेतना का प्रबंधन है। इस तत्त्व का ज्ञान ही आत्म-साक्षात्कार है, यही बुद्धत्व की पहली सीढ़ी है। इसको पाकर ही जीवन बचाया जा सकता है। इसका प्रबंधन करते ही स्वतःजीवन आनंददायक हो जाता है।

जीवित रहते हुए कैसे जीवन मुक्त होवें? बिना नंगे हुए, बिना कपड़े भिगोए नदी कैसे पार करनी है। ध्यान को पाने के कई मार्ग यहाँ पर उपलब्ध हैं। चेतना का प्रबंधन अर्थात् साक्षी का महत्त्व जानना व जीवन को सहजता से जीना।

हमारे भीतर शाश्वत जीवन का झरना है। इस झरने का अनुभव ही ध्यान है। निर्विचार की तरफ की यात्रा ही रिलैक्स होना है। अपने जीवन-प्रवाह को अभिनय मानकर जीना सबसे बड़ी कला, धर्म एवं विज्ञान है।

अतिरिक्त पाठ्य सामग्री—

ओशो—ध्यान विज्ञान

जे. कृष्णमूर्ति—ध्यान

सत्यनारायण गोयनका—जीने की कला

Mahesh Yogi—The Science of Being & Art of Living

21

ध्यान का विज्ञान: साक्षी जीवन

"चुनाव रहित सजगता ही ध्यान है।"

जे. कृष्णमूर्ति

ध्यान क्या है?

सौ बीमारियों की एक दवा ध्यान है। स्वयं को जानना ध्यान है। आत्मतत्त्व का साक्षात्कार ध्यान है। आत्म-ज्ञान हो जाना ध्यान है। स्थितप्रज्ञता ध्यान है। अपना साक्षी होना ध्यान है। ध्यान का अर्थ स्व में स्थित हो जाना है। निज पर आ जाना ध्यान है। अपनी चेतना में रमण करना ध्यान है। चेतन मन को इस तरह मोड़ना कि वह अपने में सिमट जाए अपनी चेतना को विकसित कर उसमें समा जाए एवं सब बाह्य व्यवहार के प्रति तटस्थ हो जाए। ध्यान से व्यक्ति अपनी अंतर्यात्रा करता है। अपने को जान लेना, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना, स्वयं को समझ लेना ध्यान है। सत्, चित्, आनंद को उपलब्ध हो जाना ध्यान है। ध्यान से ही स्वयं की महिमा आती है। स्वयं को समग्र में विलीन ध्यान करना है। अनंत के साथ एकरूप हो जाना है। अस्तित्व से जुड़ना ध्यान है। स्वयं को पाना ध्यान है। जीवन के सार को ध्यान द्वारा जान लिया जाता है। इसके बाद सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं और अपनी परम सत्ता के साथ एकाकार हो जाता है। तब जीवन-प्रबंधन करना नहीं पड़ता है, हो जाता है। अस्तित्व स्वयं आपकी रक्षा अहंकार के जाते ही करने लगता है। ध्यान जानने वाले को जान लेता है। 'जो है' के साथ हो जाता है व 'होना चाहिए' के फंदे से निकल जाता है। ध्यानी कार्य-कारण के घेरे से तब बाहर हो जाता है। जन्म-मृत्यु के चक्र से ध्यानी बाहर आ जाता है। जब वह अपना साक्षी हो जाता है तो घटनाएँ उसे विचलित नहीं करती हैं। वह सबका साक्षी हो जाता है। अपने भीतर जानने वाले के प्रति सजग हो जाता है।

ध्यान में एकाग्रता नहीं है। अधिकांश लोग ध्यान का अर्थ एकाग्रता समझते हैं। जबकि वह पतंजलि के अनुसार वह त्राटक की क्रिया है, जो स्वयं के पास आने में सहायक है। सघनता, केंद्रीकरण, एक जगह अवस्थित होना ध्यान नहीं है।

एक विशेष भाव-दशा या शारीरिक मुद्रा धारण कर लेते हैं, तो यह मन का ही एक खेल और खिलौना बन जाता है। यह सब आप ही को सीखना है, स्वयं का निरीक्षण करते हुए कोई पुस्तक, कोई गुरु आपको इस संबंध में कुछ नहीं

सिखा सकते हैं। कोई दूसरा आपको मात्र संकेत कर सकता है। सड़क पर लगे मील के पत्थर आपको दिशा व स्थिति बता सकते हैं। किसी पर निर्भर न रहें, आध्यात्मिक संस्थाओं की शरण में न जाएँ। ध्यान में कोई दूसरा नहीं ले जा सकता।

मंजिल हेतु चलना आपको ही पड़ेगा।

ध्यान के बिना हम जगमगाते रंगों, झिलमिलाते प्रकाश और छाया के जगत् में जीने वाले एक अंधे व्यक्ति के समान हैं।

गहरे ध्यान में बाधाएँ–

- प्रतिदिन ध्यान नहीं करना।
- नियत समय पर न करना।
- बेमन से ध्यान करना।
- बेहोशी में ध्यान करना।
- ध्यान में रुचि का कम होना।
- ध्यान को कम महत्त्व देना।
- ध्यान में व्यवधान पड़ना।
- ध्यान को आदत बना लेना। इससे ध्यान यांत्रिक हो जाएगा।
- नशा करना—अधिक चाय, कॉफी, शराब पीना आदि।
- तीव्र अहं, लोभ व काम में जीना।

ध्यान की कोई विधि नहीं, सारी विधियाँ तैयारी की

सारी विधियाँ स्वयं को उलीचने की होती हैं, ताकि सफाई हो जाए। ध्यान की तैयारी हेतु अनेक तरह के उपक्रम प्रचलित हैं। जैसाकि झेन संत नान-इन ने लिखा है कि ध्यान का अर्थ प्याला खाली करना है। श्रीश्री रविशंकर सुदर्शन क्रिया कराते हैं। योगदा वाले क्रिया योग सिखाते हैं। श्री सत्यनारायण गोयनका विपश्यना सिखाते हैं। ओशो डाइनेमिक मेडिटेशन बताते हैं।

डाइनेमिक मेडिटेशन में व्यक्ति अपना रेचन करता है। मन-मस्तिष्क में समाए तमाम तरह के दबावों को बाहर फेंकता है। वैसे ओशो ने शिव द्वारा पार्वती को बताई सभी एक सौ बारह विधियों की चर्चा 'तंत्र-सूत्र' में की है। उनके अनुसार आप किसी भी विधि को तीन दिन करो, अगर वह आपके अनुकूल होगी तो स्वतः ही आपको अच्छी लगने लगेगी, अच्छी लगे तो उसे जारी रखो अन्यथा यह विधि आपके लिए नहीं बनी है। वैसे इन सब विधियों में वास्तव में रीढ़ की हड्डी को सीधे रखते हुए मौन बैठना ध्यान की तैयारी है। अपनी श्वास को देखो, जिससे द्रष्टा भाव विकसित होगा, ताकि आप अपने तन में चलने वाली संवेदनाओं व मन से चलते विचारों को तटस्थ भाव से देख सको। असलियत में संवेदनाएँ आपकी आत्मा की आवाजें हैं। इनको सुनना ब्रह्मांडीय मेधा को सुनना है। तब इसके अनुसार जीना आनंद बन जाता है। हम इसके अंश बन जाते हैं।

ध्यान की तीन अनिवार्यताएँ

विश्रामपूर्ण अवस्था—मन के साथ कोई संघर्ष नहीं, मन पर कोई नियंत्रण नहीं; कोई एकाग्रता नहीं।

साक्षी भाव—जो भी चल रहा है, उसे बिना किसी हस्तक्षेप के, बस शांत होकर सजगता से देखना।

अनिर्णय—बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के, बस मन को देखते रहो। कोई टिप्पणी नहीं।

ये तीन बातें हैं—विश्राम, साक्षित्व, अनिर्णय अर्थात् धीरे-धीरे गहन मौन ध्यान में उतारना है। भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है। ध्यानी होता है, लेकिन 'मैं हूँ' का भाव नहीं है—बस एक शुद्ध आकाश है—शांत विस्तार।

प्रत्येक कोशिका में विद्युत् आवेग होते हैं। इन्हीं विद्युतीय आवेगों से हमारा आभामंडल बनता है, जो विद्युत चुंबकीय क्षेत्र है। इस क्रिया के साथ अन्य कोशिकाएँ भी तालमेल बना लेती हैं। अतः हर समय शरीर के भीतर की जागरूकता बनाए रखें।

यथार्थ में ध्यान की कोई निश्चित विधि नहीं है। ध्यान की कोई तकनीक और तरकीब नहीं होती, इसलिए इसका कोई अधिकारी और दावेदार भी नहीं होता। जब आप स्वयं का निरीक्षण करते हुए अपने बारे में सीखते हैं, अर्थात् किस तरह आप खाते-पीते हैं, किस ढंग से आप चलते-फिरते हैं, क्या बातचीत और गपशप करते हैं, आपका ईर्ष्या करना, नफरत करना, जब आप अपने भीतर और बाहर की इन सारी चीजों के प्रति सजग और सचेत होते हैं, बिना किसी चुनाव के तो यह ध्यान का ही अंग है।

होश में रहना ध्यान है। वस्तु व व्यक्ति के प्रति सजगता मात्र ध्यान नहीं है। यह स्वयं को भी देखना है। अर्थात् इसमें चेतना का दोहरा तीर कार्य करता है। जब हम सजग होकर जीवन के कार्यकलाप देख रहे हैं तो साथ ही देखने वाले को भी देखना है। दोनों तरफ से देखना ही ध्यान है।

कौन सा ध्यान श्रेष्ठ है? जब ध्यान की कोई विधि नहीं होती तो यह प्रश्न ही व्यर्थ है। शास्त्रीय संगीत से पूर्व शागिर्द जो वाद्य यंत्रों को चेक करने हेतु बजाते हैं, वह शास्त्रीय संगीत नहीं होता है। उसकी तैयारी होती है। इसी तरह सारी विधियाँ ध्यान की तैयारी है, ध्यान नहीं।

हमने अपने संघर्षों से पलायन करने के लिए अनेक प्रकार के ध्यान के आविष्कार कर लिये हैं। इन सब का आधार है अभीप्सा, संकल्प एवं उपलब्धि की उत्कंठा और इनमें निहित है द्वंद्व तथा कहीं पहुँचने के लिए संघर्ष। जान-बूझकर और सोच-समझकर किया जानेवाला यह प्रयास हमेशा संस्कारबद्ध मन की सीमाओं में ही होता है, इनमें कोई मुक्ति नहीं है। ध्यान करने की सारी चेष्टा और आयोजन ध्यान का इनकार है। यह सब मन के खेल हैं।

ध्यान का अर्थ है विचार का अंत हो जाना, मन का अंत हो जाना और समग्र के साथ एकरूप हो जाना; और तभी एक भिन्न आयाम प्रकट होता है जो समय से परे है।

'स्व' की क्रियाओं और गतिविधियों को जाने बिना ध्यान इंद्रिय उत्तेजना बन जाता है। लेकिन अगर विचार की सारी खोजों और गतिविधियों को यानी इसके भय, सुखों और संस्कारों को देखने, सुनने और समझने लग जाएँ, यानी अपने मस्तिष्क का निरीक्षण करने लग जाएँ कि यह किस तरह कार्य करता है तो ध्यान की दिशा में एक कदम बढ़ता है।

शब्द के बिना देखना अर्थात् निर्विचार-अवलोकन अत्यंत विलक्षण घटनाओं में से एक है। आंशिक और खंडित अवलोकन संभव नहीं है। इसे समग्र अवलोकन कहा जा सकता है और यह ध्यान का अंग है। लेकिन यह देखना पहचानने की प्रक्रिया नहीं है। मनुष्य मात्र देह नहीं है। मनुष्य मात्र मन यानी विचारने वाला भी नहीं है। मनुष्य मात्र मन और देह का संयोजन भी नहीं है। यह देह, मन एवं चेतना के जोड़ का परिणाम है। इसका अर्थ है कि वहाँ कुछ अनुभव नहीं किया जाता। यह असीम और अनंत की ओर द्वार खोल देता है।

ध्यान से अंतर्यात्रा-समग्रता

ध्यान को प्राप्त व्यक्ति अपनी बाह्य यात्रा कम कर देता है। सांसारिक कामनाएँ एवं वासनाएँ ध्यान से स्वतः छूट जाती हैं। इच्छा, काम, अहंकार, वासना आदि अपनी चमक खो देते हैं। ध्यान को प्राप्त व्यक्ति अपनी भौतिक उपलब्धियों को गौण बना देता है। वह पर को पहचानकर उसकी अनदेखी करता है। जिसको स्व की, अपनी आत्मा की, चेतना की महिमा का आभास हो जाता है व पर का, अहं का एवं पदार्थों से अपना मन हटा लेता है। ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति सांसारिक दौड़ से हट जाता है। हीरे को प्राप्त व्यक्ति कोयले का मोह नहीं करेगा।

बाह्य यात्रा के कम होते ही भीतर के द्वार खुल जाते हैं। व्यक्ति स्वयं की थाह पाता है। अपने मन में चलते विचारों, कार्यों को देखता है। अपने मंतव्यों को

समझने लगता है। स्वयं के कार्यों एवं विचारों की जड़ में ध्यान ले जाता है। ध्यान चैतन्य से संबंधित है। अर्थात् व्यक्ति साक्षी होकर जीने लगता है। जब हम अपने साक्षी हो जाते हैं तो जीवन की सारी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं। नित्य के साथ होने से मृत्यु का भ्रम मिट जाता है।

समग्र के साथ एकरूप हो जाने से मेरे-तेरे के चक्कर खत्म हो जाते हैं। पाने के, देने के, नाम के सब उपद्रव मिट जाते हैं। चेतना का साक्षात्कार जीवन खुशियों से भर देता है। हम वर्तमान में आ जाते हैं। चाहें जब संसार में रहकर अनासक्त भाव से संसारी बन सकते हैं। निष्काम कर्म तभी संभव है। ऐसे में चक्रवर्ती भरत और महाराजा जनक एवं कबीर सा फक्कड़ जीवन जी सकते हैं।

ध्यान को गहरा कैसे करें?

- प्रतिदिन ध्यान करें, हर स्थिति में करें।
- नियत समय पर ध्यान करें।
- स्नान करने के बाद ध्यान करें।
- सौ प्रतिशत मन लगाकर करें, पूर्णता से करें।
- ध्यान का प्रत्येक चरण नियत समय तक करें।
- संभव हो तो ध्यान सुबह करें।
- ध्यान खेल-भाव से करें।
- ध्यान में परिणाम नहीं खोजें।
- ध्यान में प्यास रखें, लेकिन धैर्य भी रखें।
- ध्यान होश में करें।

22

चेतना का विज्ञान

"जड़ के भीतर विवेकवान चेतन है।"

—श्रीराम शर्मा

"बुद्धत्व पाना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

—इमर्सन

हमारी संस्कृति के पुरोधा व तत्त्वज्ञानी बताते हैं कि चेतना वह तत्त्व है, जो हमारा आदि कारक है, शाश्वत है एवं सब तत्त्वों का कारण है; यद्यपि इसको बुद्धि द्वारा प्रमाणित करना कठिन है। हम सब चेतना के फलस्वरूप बने हैं। हम चेतना से ही उपजे हैं।

चेतना ही सभी शारीरिक अभिव्यक्तियों का प्रमुख आधार है, सारी उत्पत्ति ही चेतना की अभिव्यक्ति है। ध्यान से चेतना अधिक जागरूक हो उठती है और अधिक स्वस्थ हो जाती है। चेतना स्वयं में अपरिमित शक्तियों का स्रोत है। चैतन्य से बड़ी कोई ऊर्जा नहीं है। उपनिषदों के अनुसार चेतना ने 'बहुत होने' की इच्छा की व उससे जगत् बना।

क्षण-प्रतिक्षण का सत्य जो परिवर्तनीय है, उसे इंद्रियों से देखने पर वह स्थायी व वास्तविक लगता है। यही हमारा अज्ञान, अविधा, मान्यता है, जो स्थायी, अक्षुण्ण चैतन्य है, उसको भूल जाते हैं एवं जो अस्थायी है, उसे सत्य मान बैठे हैं। स्थायी की अनदेखी व अस्थायी को स्थायी समझने से जीवन में विसंगतियाँ होती हैं। चेतना सर्वव्यापी है, जिसके प्रवाह में मनुष्य-जीवन प्रवाहित हो रहा है।

हमारा औसत जीवन पदार्थ आधारित है। यही हमारा अज्ञान है। इसी से दुःख है। परम तत्त्व की खोज ही चेतना का विज्ञान है। चेतना का महत्त्व समझो। वह हमारे प्रगट का अप्रगट रूप ही चेतना है। हम में जो अदृश्य है वही चेतना है। जैसाकि गीता में कृष्ण ने कहा है कि चेतना अव्यक्त चेतन (Manifest) की अभिव्यक्ति (Manifestation) है, अभिव्यक्ति सदा 'अव्यक्त' की ही होती है। जो कुछ भी अव्यक्त है वह अग्नि से जलाया नहीं जा सकता है। जल में डुबाया नहीं जा सकता है, इसे काटा नहीं जा सकता है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता है।

जगत् का कारण चेतना में है। हमारे होने का कारण भी चेतना में ही है। हम चेतना के ही उत्पाद हैं, उसी की अभिव्यक्ति हैं। चेतना अर्थात् चैतन्य से पदार्थ में जीवन आता है। जानना-देखना चेतना का मुख्य गुण है।

हमारे होने का आदिकारण भी चेतना है। वैदिक-दर्शन चेतना का ही दर्शन है। स्वयं-को-स्वयं के द्वारा जानना चेतना का ही धर्म है।

चेतना की अवस्थाएँ

1. जागरण,
2. स्वप्न,
3. गहरी निद्रा-सुषुप्ति व
4. तुरीय

हम सुबह से शाम तक जागकर दुनिया में जो करते हैं; जैसे पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं एवं अन्य कर्म करते हैं, यह सब जाग्रत् अवस्था में हैं।

जाग्रत् के नीचे एक परत है—स्वप्न की, जो जाग्रत् से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह चेतना की दूसरी अवस्था है। यह बड़ी मनोवैज्ञानिक बात है। पश्चिम ने स्वीकार कर लिया कि स्वप्न महत्त्वपूर्ण हैं और फ्रायड जैसे मनीषी का पूरा जीवन लोगों के स्वप्न-अध्ययन करने में बीता। हम स्वप्न में क्या करते हैं, यह ज्यादा गहरी बात है; स्वप्न हमारे अंतस् की स्थिति को प्रगट करते हैं। इस पर मनसविद् मानते हैं कि स्वप्न भी एकदम स्वप्न नहीं है, बल्कि जाग्रत् से ज्यादा सच है।

तीसरी अवस्था हमारी सुप्त अवस्था है, निष्क्रिय अवस्था है, जिसमें हम अचेतन में रहते हैं, अर्थात् गहरी नींद में होते हैं। एक विश्राम की बात है—आदमी थक गया है और सो गया। इस तरह नींद रिचार्ज होने के लिए जरूरी है। एक आदमी साठ साल जीता है तो बीस साल सोता है। नींद का महत्त्व हम सब को ज्ञात है।

हमारी चौथी अवस्था तुरीय है, होश की है। इससे तीन अवस्थाओं का जन्म होता है। निद्रा घनी होती, स्वप्न बनते, जागृति होती; और फिर तीनों जिसमें वापस लीन हो जाते हैं। यह चौथा न तो किसी से जन्मता है, और न किसी में लीन होता है; यह शाश्वत सिद्धांत है जीवन का; यह जीवन का आधार है—प्रारंभ भी यही, अंत भी यही; और जिसने इसे नहीं जाना, वह केवल बीच की परिभ्रमणाओं में भटकता है। अर्थात् तीनों अवस्थाओं में जिसकी उपस्थिति बनी रहती है एवं जिसका ज्ञान होने पर तुरीय अवस्था आती है, यह पूर्ण होश की, सजगता, चेतनता की अवस्था है। यह दोहरा तीर चेतना का है। यह जाग्रत् से भिन्न है, इस अर्थ में जागने वाले को भी इसमें देखा जाता है।

भीतर है चैतन्य का वास, बाहर है विराट् का विस्तार। इस विराट् से संबंधित होने के दो उपाय हैं। यह जो बाहर फैला हुआ है, और यह जो भीतर निवास कर रहा है, इन दोनों के मिलन की दो यात्राएँ हैं। एक यात्रा है परोक्ष, वह यात्रा होती है इंद्रियों के द्वार से। एक यात्रा है प्रत्यक्ष, वह यात्रा होती है अतींद्रिय अवस्था से।

कर्ता का भ्रम

आदमी को भी जिस दिन पता चलता है कि जैसे हवाएँ बह रही हैं और जैसे सागर की लहरें चल रही हैं और वृक्ष बड़े हो रहे हैं, फूल खिल रहे हैं और आकाश में तारे चल रहे हैं, ऐसा ही मैं चलाया जा रहा हूँ; कोई है जो मेरे भीतर चलता है, और कोई है जो मेरे भीतर बोलता है; मैं अलग से कुछ भी नहीं हूँ; बस वह परमात्मा ही है। यह चौथी होश की अवस्था में ही संभव है।

कर्ता होने का हमारा भ्रम है, वही भ्रम हमें दुःख देता है। वही भ्रम दीवार बन जाता है, जिस दिन भ्रम नहीं रहता उस दिन वही रह जाता है।

मैं कौन हूँ? मैं किस तत्त्व से बना हूँ? मेरा स्वभाव कैसा है? मैं क्यों बना हूँ? इन सब महत्त्वपूर्ण प्रश्नों ने धर्म की खोज की। हमारे ऋषियों ने अपने अनुभव से उत्तर दिया कि हम दृश्य देश-काल में जो है, उसके पीछे शाश्वत चैतन्य है। जिसे वेदांत-दर्शन ब्रह्म कहता है। जैन-दर्शन, जिसे शरीर के भीतर का सार-आत्मा कहता है। बौद्ध धर्म इसे शून्य कहता है। इसी को पहचानना-जानना हमारा लक्ष्य है। इसी ही आत्मानुभव होना कहते है।

सात आध्यात्मिक नियम

अपने जीवन के प्रबंधन में अध्यात्म के नियम उपयोगी हैं। आनंदित होने के लिए, खुद के नियमन हेतु खोजे गए ऋषियों के अनुभवों को अध्यात्म कहते हैं। हजारों वर्षों से अनेक लोगों ने इस मार्ग पर चलकर जीवन सार्थक बनाया है, तभी तो इसे अध्यात्म विज्ञान कहते हैं।

स्वयं की खोज में जुटे वेदव्यास, पतंजलि, बुद्ध, महावीर से लेकर शंकराचार्य तक—सभी ने इन्हें सार्थक पाया है। ये नियम सर्वकालिक एवं अनुभूत हैं। इस मार्ग पर चलने वाला इन्हें स्वयं अनुभव कर सकता है। वस्तुतः ये प्रकृति के नियम हैं—

1.पूर्ण चेतना का नियम

इसे विशुद्ध सामर्थ्य का नियम भी कहते हैं। इसका अर्थ अंतर्निहित क्षमता के जागरण से है। हम अनंत क्षमता युक्त हैं। हमारी संभावनाएँ बहुत हैं, लेकिन अभी सोई हुई हैं। हम चेतना से बने हैं। हम मात्र शरीर नहीं हैं। इस शरीर का निर्माण प्राकृतिक नियमों के अधीन हैं। हम मात्र पदार्थ से नहीं बने हैं। स्वयं को शाश्वत चेतना स्वीकारने से हमारा भय आदि बहुत सी प्रबंधन की समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। हमारे भीतर बहुत क्षमता है। उसका अनुभव करें।

2. जीवन आदान-प्रदान का नियम

हमारा जीवन आदान-प्रदान के नियम पर निर्भर है। शरीर ब्रह्मांड से प्रतिक्षण कुछ लेता है, तो कुछ देता भी है। तभी दान करने पर सभी धर्मों में जोर दिया गया है। देने से हमें मिलता है। जो देने में रुकावट डालते हैं, उन्हें प्राप्त होने में भी रुकावटें पड़ती हैं। प्रकृति के प्रवाह के अनुरूप चलना ही अध्यात्म है। इसे समर्पण का नियम भी कहते हैं।

3. कार्य-कारण का नियम

हमारा अस्तित्व कार्य-कारण के नियम से संचालित है। हम सब जैसा करते हैं, तदनुरुप ही फल पाते हैं। अतः कार्य करते वक्त ही सोचने की जरूरत है। कार्य हमारे वश में है, परिणाम तो उसका परवर्ती प्रकरण है। कर्मवाद का सिद्धांत इसी पर आधारित है। इसे प्रभाव का नियम भी कहते हैं।

4. न्यूनतम चेष्टा का नियम

प्रकृति में लय व ताल है। उसके अनुसार घटनाएँ घटती हैं। अतः हमें न्यूनतम चेष्टा करनी चाहिए। कार्य करते वक्त तनाव नहीं पालना चाहिए। विश्राम एवं संतोष के साथ धैर्यपूर्वक जीना चाहिए।

5. इच्छा एवं संकल्प का नियम

चेतना की इच्छा व संकल्प के अनुसार सबकुछ घटित होता है। हम जो भी हैं वह अपनी इच्छा एवं सोच के कारण हैं। ब्रह्मांडीय मेधा स्वतः ही व्यवस्था करती है। इसलिए स्वार्थी होने की जरूरत नहीं है।

6 . अनासक्ति का नियम

प्रकृति चेतना अनुसार कार्य करती है। अतः इच्छा की जरूरत नहीं है। अपनी बुद्धि न लगाओ। आसक्ति से दुःख मिलते हैं, क्योंकि परिणाम तो आसक्ति से नहीं, कर्म अनुसार आते हैं। अतः अनासक्ति अध्यात्म का नियम है।

7. उद्देश्य का नियम

अध्यात्म का अंतिम नियम जीवन का उद्देश्य समझने का है। अपनी विशिष्ट प्रतिभा को व्यक्त होने दें।

जीवन प्रबंधन में अध्यात्म के नियम सहायक हैं। इनको स्वीकारने से सारी समस्याएँ हल नहीं हो जाती हैं। लेकिन नियमों के अनुसार चलने से स्वयं को जानने में सहायता मिलती है। रास्ता आसान हो जाता है, जिससे जीवन का प्रबंधन करना भी सरल हो जाता है। मात्र नियम जानने से नहीं, उनको अनुभव कर उनको आत्मसात् करने से समस्याएँ मिटती हैं।

होश बढ़ाओ, ऊर्जा बचाओ

तेज यांत्रिक रूप से चलने में बहुत ऊर्जा खर्च हो जाती है। अतः सजगता से धीरे-धीरे चलें, इससे ऊर्जा भी बचेगी व शरीर में लय भी आएगी। आँखों की पलकें तक सहजता से व धीरे-धीरे उठाओ-गिराओ। सरलता से देखो। देखने में पूरे प्राण मत लगाओ, हमारी अधिकांश ऊर्जा उतावलापन व बेहोशी खा रही है। धीरे-धीरे सोचो। गुस्से में विचार-शून्यता आ जाती है या विचारों में तारतम्यता टूट जाती है, आवेश पूरी ऊर्जा को डस जाता है। इसलिए इससे बचो। उतावल करते वक्त देह खिंचती है, कड़क होती है। यही तनाव है, विश्राम में आते ही शरीर शिथिल हो जाता है। शरीर का प्रत्येक अंग धीरे-धीरे होश में हिलाओ, ताकि सिनर्जी व सिंक्रोनाइजेशन ¼synergy & synchronization) दोनों होंगे। तब आप संपूर्ण व सहज होंगे। सहज द्रष्टा बनो, बिना विचार के बस देखो।

भागवत चेतना

आज यह कहा जा सकता है कि ईश्वर ने मनुष्य नहीं बनाया है, बल्कि मनुष्य ने ही ईश्वर की रचना की है। मनुष्य ने अपनी छवि अनुसार भगवान् की रचना की है। तभी तो अनेक तरह के प्रभु विद्यमान हैं। सब धर्मों ने अपने-अपने ईश्वर माने हैं।

मैं भगवान् का अस्तित्व नहीं मानता हूँ। लेकिन भगवत् सत्ता का सर्वत्र अनुभव करता हूँ। भगवान् व्यक्ति नहीं एक गुणवत्ता है, एक शक्ति है। प्रेम, मौन, शांति

एवं आनंद के रूप में ईश्वर को देखा जा सकता है, व्यक्ति के रूप में कहीं ईश्वर नहीं है। ईश्वर एक व्यक्ति नहीं, बल्कि शक्ति का नाम है।

ईश्वर एक व्यक्ति नहीं उपस्थिति है। जब कोई 'उपस्थिति' कहता है तो ध्यान से सुनें, वरन् उसके भी हम आप अपनी धारणाओं से अलग-अलग अर्थ निकालेंगे। यह हमारे भीतर की उपस्थिति है। स्वयं की सत्ता की उपस्थिति ही आप में भगवान् है।

कहीं सृजक नहीं है, सर्वत्र सृजनशीलता है। शिल्प भी आप, शिल्पी भी आप, द्रष्टा दृश्य से भिन्न नहीं, दृश्य ही है। सारा जगत् चेतना प्रक्षेपण है।

जब आपके साथ भीड़ होती है तब आप स्वयं को सुरक्षित व सही समझते हैं। जब आप अकेले होते हैं तो काँपते हैं। हम सब एक तरह के सामाजिक सम्मोहन में जीते हैं। मान्यताएँ हमें नचाती हैं।

संसार ही मूर्ति है ईश्वर की। ईश्वर की मूर्ति किसी देवालय में विराजमान मूर्ति नहीं है।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में ईशावास्योपनिषद् है, जिसका प्रथम मंत्र ही हमें यह शिक्षा देता है कि 'संपूर्ण ब्रह्मांड में जो कुछ भी है जड़, चेतन, वह सब जगत् रूप में है। सभी कुछ परम सत्ता से व्याप्त है, आनंद है। इस आनंद का उपभोग इनसान को त्याग के साथ करना चाहिए। साथ ही उसमें अधिक आसक्त भी नहीं रहना चाहिए, क्योंकि उपयोग में आनेवाले संपूर्ण पदार्थ किसी के नहीं हैं। अतः किसी के प्रति भी हमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।'

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा ही व्याप्त है। इसी परमात्मा शब्द से आत्मा शब्द की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि व ईश्वर दोनों एक-दूसरे का पर्याय हैं, इनमें तुलना नहीं हो सकती हैं। सृष्टि से सभी लोग समान रूप से जुड़े हुए हैं। जगत् सदैव परिवर्तनशील है, जड़ भी व चेतन भी। जड़ का रूप परिवर्तित होता रहता है। यही चेतना की गतिशीलता का प्रमाण है।

संपूर्ण विश्व आदर्श विश्व बनता है या नहीं, यह उतना महत्त्व नहीं रखती जितना यह बात रखती है कि क्या हम स्वयं जीवन में जीने की कला सीख सकते हैं व अपने संपर्क में आनेवाले लोगों को प्रेम दे सकते हैं। यदि इतना भी हम अपने जीवन में कर लें तो बहुत है।

हम कॉस्मिक एनर्जी के साथ सहयोग नहीं करते हैं, इसीलिए हम अशांत हैं। हमारे सारे दुःख 'होनी' को नहीं स्वीकारने के कारण हैं। जो होता है, उसके साथ

हम नहीं होते हैं। हमारा प्रतिकार विरोध ही समस्या की जड़ में है। हम अहं के कारण अपनी चलाते हैं, जो चल रहा है उसके साथ नहीं होते हैं।

सोचो रुक-रुककर, बीच में अंतराल रखते हुए, इस अंतराल को देखते हुए। तीव्रता से, आवेश में सोचने से सोचना संतुलित नहीं होता है। ऐसी सोच विकृत होती है। विचारों का आना स्वयं को खूँटी पर टँगने के समान है। विचार आपको संबंधित बनाते हैं, जिससे आपकी बाह्य यात्रा चलती है। हम संबंधों के परे कुछ भी नहीं हैं।

गांधीजी को अहिंसा सिखाने वाले श्रीमद् राजचंद्र ने कहा, "जिसने चेतना को जाना उसने सब जाना।"

कुछ खास बात

हम सब में कुछ खास बात है। हम सबमें किसी-न-किसी रूप में कोई-न-कोई विशेषता है। दूसरों की तुलना में अच्छाई है। हम अद्वितीय हैं, अनुपम हैं, खास हैं।

यह दुर्भाग्य की बात है कि हम अपनी खास बात को स्पष्ट रूप से नहीं जानते हैं। हम अपने को वक्त नहीं देते हैं। स्वयं की अनदेखी करते हैं। स्वयं को भूल जाते हैं। अपने को महत्त्व नहीं देते, अपनी विशेषता नहीं खोजते हैं। परमात्मा ने, प्रकृति ने, अस्तित्व ने आपको, हमको, सबको सकारण बनाया है। हम उसी की योजना के अनुसार हैं। वह व्यर्थ कुछ नहीं करता है। फिर हम बेकार के कैसे हो सकते हैं? हम उसी विराट् के अंश हैं, चाहे कितने ही छोटे हों।

प्रयोग—आँखें बंद कर (दो मिनट) सब लोग क्रमशः पाँच चेहरे याद करें। कितनों को माता, पिता, पत्नी, बच्चे याद आए? किसी को खुद का चेहरा दिखा? इससे आपको प्रकट होगा कि आप किसे महत्त्व देते हैं। महत्त्व के क्रम अनुसार ही चेहरे दिखतेहैं।

मनुष्य एक बरबाद परमात्मा है। उसे अपने भीतर असीम सुख प्राप्त है व उसको प्रकट कर परमात्मा बन सकता है। मनुष्य का जन्म आनंद को पाने के लिए हुआ है। व्यक्तिगत जीवन, व्यावसायिक जीवन, पारिवारिक जीवन व सामुदायिक जीवन को सँभालना, सँवारना व रचनात्मक बनाना है, समरस बनाना है। इसमें सामंजस्य स्थापित करना है। मेरा उद्देश्य आपके जीवन को ऊँचा उठाना है। इसमें आनंद पैदा करना है। मनुष्य जीवन को समाज के लिए उपयोगी बनाना है। संवेदनशील व नेतृत्व गुणों से युक्त बनाना है।

हम रोते हुए पैदा होते हैं, लेकिन यहाँ से जाते वक्त तो हँस सकते हैं।

जीवन-प्रबंधन के अनूठे सूत्र

"जीवन में कोई चीज इतनी हानिकारक और खतरनाक नहीं, जितना खतरनाक है डाँवाँडोल स्थिति में रहना।"

—सुभाष चंद्र बोस

"चिड़ियों की तरह हवा में उड़ना और मछलियों की तरह पानी में तैरना सीखने के बाद अब हमें इनसानों की तरह जमीन पर चलना सीखना है।"

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

"जीवन-प्रबंधन पदार्थ, सत्ता, परिधि, काल और रूप के दायरे में बँधा है।"

"मनः सत्ता में अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ, विचार और बिंब के रूप में व्याख्या होतीहै।"

—हाइसेन बर्ग

"मनुष्य केवल शरीर या मन ही नहीं है, वह भावना और इच्छा भी है और इनके परे भी कुछ है।"

—सत्यानंद

"जिसका यह दावा है कि वह आध्यात्मिक चेतना के शिखर पर है, मगर उसका स्वास्थ्य खराब रहता है तो इसका अर्थ है कि मामला कहीं गड़बड़ है।"

—महात्मा गांधी

"भय से ही दुःख आते हैं, भय से ही मृत्यु और भय से ही बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं।"

—स्वामी विवेकानंद

"चाहे राजा हो या किसान, वह सबसे ज्यादा सुखी है जिसको अपने घर में शांति प्राप्त होती है।"

—गेटे

"मेरी चापलूसी करो और मैं आप पर भरोसा नहीं करूँगा, मेरी आलोचना करो और मैं आपको पसंद नहीं करूँगा, मेरी उपेक्षा करो और मैं आपको माफ नहीं करूँगा, मुझे प्रोत्साहित करो और मैं आपको कभी नहीं भूलूँगा।"

—विलियम ऑथर वार्ड

"हमारे साथ प्रायः समस्या यही होती है कि हम झूठी प्रशंसा के द्वारा बरबाद हो जाना तो पसंद करते हैं, परंतु वास्तविक आलोचना के द्वारा सँभल जाना नहीं।"

—नॉर्मन विंसेंट पील

"व्यवस्था मस्तिष्क की पवित्रता है, शरीर का स्वास्थ्य है, शहर की शांति है, देश की सुरक्षा है। जो संबंध धरन (बीम) का घर से है, हड्डी का शरीर से है, वही संबंध व्यवस्था का सब चीजों से है।"

—राबर्ट साउथ

"एक अच्छी व्यवस्था ही सभी महान् कार्यों की आधारशिला है।"

—एडमंट बुर्क

"संसार का सबसे बड़ा दिवालिया वह है जिसने उत्साह खो दिया।"

—श्रीराम शर्मा आचार्य

"खोजना, प्रयोग करना, खतरा उठाना, नियम तोड़ना, गलती करना और मजे करना सृजन है। जिस प्रकार रात्रि का अंधकार केवल सूर्य दूर कर सकता है, उसी प्रकार मनुष्य की विपत्ति को केवल ज्ञान दूर कर सकता है।"

—नारदभक्ति

"यदि मनुष्य के मन में कोई बुद्धिमानी है तो स्वयं की एकाग्रता और कोई खराबी है तो शक्तियों का बिखरना।"

—इमर्सन

Published by

Gyan Ganga

205-C Chawri Bazar,

Delhi-110006

ISBN 978-93-5186-007-5

Jiyo To Aise Jiyo

by Jayanti Jain

Edition

First, 2012